वार्षिक रु. १६०, मूल्य रु. १७

ISSN 2582-0656

विवेक ज्योति

रामकृष्ण मिशन
विवेकानन्द आश्रम
रायपुर (छ.ग.)

वर्ष ५९ अंक ८
अगस्त २०२१

।। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ।।

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

अगस्त २०२१; श्रावण, सम्वत् २०७८

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी सत्यरूपानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी पद्माक्षानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

वर्ष ५९
अंक ८

वार्षिक १६०/– **एक प्रति १७/–**

५ वर्षों के लिये – रु. ८००/–
१० वर्षों के लिए – रु. १६००/–
(सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाएँ
अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कराएँ :
सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, **अकाउन्ट नम्बर** : 1385116124
IFSC CODE : CBIN0280804
कृपया इसकी सूचना हमें तुरन्त केवल ई-मेल, फोन, एस.एम.एस., व्हाट्सएप अथवा स्कैन द्वारा ही अपना नाम, पूरा पता, **पिन कोड** एवं फोन नम्बर के साथ भेजें।
विदेशों में – वार्षिक ५० यू. एस. डॉलर;
५ वर्षों के लिए २५० यू. एस. डॉलर (हवाई डाक से)
संस्थाओं के लिये –
वार्षिक रु. २००/– ; ५ वर्षों के लिये – रु. १०००/–

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,
रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)
विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५
ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com
वेबसाइट : www.rkmraipur.org
आश्रम : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९
(समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

अनुक्रमणिका

१. श्रीकृष्ण – जन्मोत्सव और बाल-लीला ३४१
२. सम्पादकीय : सोभित कर नवनीत लिये ३४२
३. भारत की नारियाँ (स्वामी विवेकानन्द) ३४४
४. श्रीरामकृष्ण-गीता (२)
(स्वामी पूर्णानन्द) ३४७
५. आध्यात्मिक जिज्ञासा (६८)
(स्वामी भूतेशानन्द) ३४८
६. भक्त ने भगवान को आँख अर्पण किया
(श्रीधर कृष्ण) ३५०
७. मृत्युञ्जयाष्टकम् (डॉ. सत्येन्दु शर्मा) ३५२
८. रामराज्य का स्वरूप (३/३)
(पं. रामकिंकर उपाध्याय) ३५३
९. पुरखों की थाती (संस्कृत सुभाषित) ३५५
१०. (बच्चों का आँगन) 'मुझे ऐसा ही जीना है', 'मुझे ऐसा ही मरना है।'
(स्वामी गुणदानन्द) ३५६
११. वरिष्ठ साधुओं की स्मृतियाँ (१)
(स्वामी ब्रह्मेशानन्द) ३५७
१२. प्रश्नोपनिषद् (१५)
(श्रीशंकराचार्य) ३५९
१३. श्रीमद्भागवत और भगवान श्रीकृष्ण
(सुरेशचन्द्र श्रीवास्तव) ३६०
१४. सारगाछी की स्मृतियाँ (१०६)
(स्वामी सुहितानन्द) ३६२
१५. डॉ. ओमप्रकाश वर्मा के तीन काव्य ३६४
१६. (युवा प्रांगण) इफ्तिकार की शौर्य गाथा
(मीनल जोशी) ३६५
१७. गोपी तत्त्व (रामसनेही पाण्डेय) ३६७

ISSN 2582-0656

१८. मानव जीवन में आध्यात्मिक शान्ति की पिपासा और प्राप्ति (बिकेश कुमार सिंह) ३६९
१९. भागवत में वैराग्य (मौनी स्वामी रविपुरी जी) ३७०
२०. (कविता) आशुतोष जय अवढरदानी (भानुदत्त त्रिपाठी) ३७३
२१. गीतातत्त्व-चिन्तन – (२) (दशम अध्याय) (स्वामी आत्मानन्द) ३७४
२२. कोरोना में राजसूय यज्ञ (स्वामी दाशरथानन्द) ३७७
२३. भगवान को क्या दें? (स्वामी सत्यरूपानन्द) ३७९
२४. साधुओं के पावन प्रसंग (३२) (स्वामी चेतनानन्द) ३८०
२५. अनासक्त संन्यासी ३८३
२६. समाचार और सूचनाएँ ३८४

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

आवरण पृष्ठ में भगवान श्रीकृष्ण के बालरूप को दर्शाया गया है।

अगस्त माह के जयन्ती और त्यौहार

६	स्वामी रामकृष्णानन्द
२२	स्वामी निरंजनानन्द
३०	श्रीकृष्ण जन्माष्टमी
४,१८	एकादशी

लेखकों से निवेदन

सम्माननीय लेखको ! गौरवमयी भारतीय संस्कृति के संरक्षण और मानवता के सर्वांगीण विकास में राष्ट्र के सुचिन्तकों, मनीषियों और सुलेखकों का सदा अवर्णनीय योगदान रहा है। विश्वबन्धुत्व की संस्कृति की द्योतक भारतीय सभ्यता ऋषि-मुनियों के जीवन और लेखकों की महान लेखनी से संजीवित रही है। आपसे नम्र निवेदन है कि 'विवेक ज्योति' में अपने अमूल्य लेखों को भेजकर मानव-समाज को सर्वप्रकार से समुन्नत बनाने में सहयोग करें। विवेक ज्योति हेतु रचना भेजते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखें –

१. धर्म, दर्शन, शिक्षा, संस्कृति तथा मानव के नैतिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक विकास से सम्बन्धित रचनाओं को 'विवेक-ज्योति' में स्थान दिया जाता है।, **२.** रचना बहुत लम्बी न हो। पत्रिका के दो या अधिकतम चार पृष्ठों में आ जाय। पाण्डुलिपि फूलस्केप रूल्ड कागज पर दोनों ओर यथेष्ट हाशिया छोड़कर स्पष्ट सुन्दर हस्तलेख में लिखी या टाइप की हुयी हो। आप अपनी रचना ई-मेल – vivekjyotirkmraipur@gmail.com से भी भेज सकते हैं।, **३.** लेख में आये उद्धरणों के सन्दर्भ का पूरा विवरण दें।, **४.** आपकी रचना डाक में खो भी सकती है, अत: उसकी एक प्रतिलिपि अपने पास अवश्य रखें। अस्वीकृति की अवस्था में वापसी के लिये अपना पता लिखा हुआ एक लिफाफा भी भेजें।, **५.** पत्रिका हेतु कवितायें छोटी, सारगर्भित और भावपूर्ण लिखें।, **६.** 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होगी और स्वीकृत रचना में सम्पादक को यथोचित संशोधन करने का पूरा अधिकार होगा। न्यायालय-क्षेत्र रायपुर (छ.ग.) होगा।, **७.** 'विवेक-ज्योति' में मौलिक और अप्रकाशित रचनाओं को ही प्राथमिकता दी जाती है, इसलिये अनुवाद न भेजें। यदि कोई विशिष्ट रचना इसके पहले किसी दूसरी पत्रिका में प्रकाशित हो चुकी हो, तो उसका उल्लेख अवश्य करें।

*विवेक ज्योति के अंक ऑनलाइन पढ़ें : **www.rkmraipur.org***

क्रमांक	विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना के सहयोग कर्ता	प्राप्त-कर्ता (पुस्तकालय/संस्थान)
६६१.	श्री गणेश शंकर देशपांडे, पद्मनाभपुर, दुर्ग (छ.ग.)	श्री रामशंकर त्रिपाठी, बनेर पषान,लिंक रोड पुणे (महा.)
६६२.	,, ,,	श्री अमोद मुधोलकर, बनेर पषान,लिंक रोड पुणे (महा.)
६६३.	,, ,,	श्री अविनाश अठले, गणपति अपार्टमेंट, द्वारका, नईदिल्ली

सुदर्शन सोलार...
ऊर्जा अपरंपार !

आधुनिक भारत की बिजली की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए हमारे पास पर्याप्त मात्रा में सौर ऊर्जा उपलब्ध है। प्राकृतिक रुप से उपलब्ध इस स्त्रोत का प्रतिदिन की अपनी आवश्यकताओं के लिये उपयोग करके, अपने बिजली के बिल में भारी पैमाने पर कटौती कर, हम अपने देश को बिजली के निर्माण में आत्मनिर्भर बनाने में सहायता कर सकते हैं।

इस सुन्दर भूमि को सदा हरी-भरी रखने के लिये अपना साथी

भारत का विश्वसनीय सौर ऊर्जा ब्रांड - 'सुदर्शन सौर'!

सोलर वॉटर हीटर
24 घंटे गरम पानी के लिए

सोलर लाइटिंग्स
ग्रामीण क्षेत्र में घरेलू उपयोग के लिए

सोलार इलेक्ट्रिसिटी सिस्टम
रुफटॉप सोलार
बिजली उत्पन्न करने के लिए

घर, बंगलोज, हॉस्पिटल्स, हॉटेल्स, इंडस्ट्रीज, कमर्शिअल कॉम्प्लेक्स, इन्स्टिट्यूट्स के लिए उपयुक्त

समझदारी की सोच!

३० साल का प्रदीर्घ अनुभव!

आजीवन सेवा — लाखों संतुष्ट ग्राहक — विस्तृत डीलर नेटवर्क

Sudarshan Saur®

SMS: **SOLAR to 58888**

Toll Free
1800 233 4545

www.sudarshansaur.com
E-mail: office@sudarshansaur.com

।। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च।।

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

वर्ष ५९ अगस्त २०२१ अंक ८

श्रीकृष्ण–जन्मोत्सव और बाल-लीला

निशीथे तम उद्भूते जायमाने जनार्दने।
देवक्यां देवरूपिण्यां विष्णुः सर्वगुहाशयः।
आविरासीद् यथा प्राच्यां दिशीन्दुरिव पुष्कलः।।

(श्रीमद्भागवत १०/३/८)

– जन्म-मृत्यु के चक्र से छुड़ानेवाले जनार्दन के अवतार का समय था निशीथ। चारों ओर अन्धकार का साम्राज्य था। उसी समय सबके हृदय में विराजमान भगवान विष्णु देवरूपिणी देवकी के गर्भ से प्रकट हुए, जैसे पूर्व दिशा में सोलहों कला से पूर्ण चन्द्रमा का उदय हो गया हो।

अवाद्यन्त विचित्राणि वादित्राणि महोत्सवे।
कृष्णे विश्वेश्वरेऽनन्ते नन्दस्य व्रजमागते।। (१०/५/१३)

– जगत्स्वामी श्रीकृष्ण, जिनके ऐश्वर्य, माधुर्य, वात्सल्य, सभी अनन्त हैं, वे जब नन्द बाबा के व्रज में प्रकट हुए, तब उनके जन्म का महान उत्सव मनाया गया।

कालेन वज्रताल्पेन गोकुले रामकेशवौ।
जानुभ्यां सह पाणिभ्यां रिङ्गमाणौ विजह्रतुः।।२१।।
तावङ्घ्रियुग्ममनुकृष्य सरीसृपन्तौ
घोषप्रघोषरुचिरं व्रजकर्दमेषु।
तन्नादहृष्टमनसावनुसृत्य लोकं
मुग्धप्रभीतवदुपेयतुरन्ति मात्रोः।।२२।

(१०/८/२१-२२)

– कुछ ही दिनों में राम-श्याम घुटनों और हाथों के बल चलकर गोकुल में खेलने लगे। दोनो भाई अपने नन्हें-नन्हें पावों को गोकुल की मिट्टी में घसीटते हुए चलते। तब उनके पाँव और कमर के घुँघरू रुन-झुन बजने लगते। वह शब्द बहुत अच्छा लगता। वे दोनों स्वयं वह ध्वनि सुनकर खिल उठते। कभी-कभी वे किसी अज्ञात व्यक्ति के पीछे चलते, जब देखते कि यह दूसरा है, तो झट से डरकर अपनी माताओं रोहिणी और यशोदाजी के पास चले आते।

योऽयं कालस्तस्य तेऽव्यक्तबन्धो
चेष्टामाहुश्चेष्टते येन विश्वम्।
निमेषादिर्वत्सरान्तो महीयां-
स्तं त्वेशानं क्षेमधाम प्रपद्ये।। (१०/३/२६)

– प्रकृति के एकमात्र सहायक प्रभो ! निमेष से लेकर वर्षपर्यन्त अनेक विभागों में विभक्त जो काल है, जिसकी चेष्टा से यह सम्पूर्ण विश्व सचेष्ट हो रहा है और जिसकी कोई सीमा नहीं है, वह आपकी लीला मात्र है। आप सर्वशक्तिमान और परम कल्याण के आश्रय हैं, मैं आपकी शरण लेती हूँ।

सम्पादकीय

सोभित कर नवनीत लिये

भक्तिमार्ग में ईश्वर से प्रेम करने के लिए विभिन्न प्रकार के भावों का उल्लेख किया गया है। जैसे – शान्तभाव, सख्यभाव, दास्यभाव, वात्सल्यभाव, मधुरभाव। इनमें एक वात्सल्य भाव भी है, जिसमें भक्त को अत्यन्त आनन्द मिलता है। इसमें भगवान के साथ वात्सल्य भाव का आधान करना, भगवान को एक शिशु के रूप में देखना और उनकी बाल-लीला का आनन्द लेना है। लोक-जीवन में भी किसी छोटे बालक को देखकर सबको आनन्द मिलता है। बालक का निर्दोष प्रसन्न मुखमंडल सबको आकर्षित और आनन्दित करता है। इसलिये बालक को बाल-भगवान कहते हैं। माता कौशल्या और यशोदा मैया ने श्रीराम और श्रीकृष्ण के इस बालरूप के वात्सल्य रस का आस्वादन किया था। भगवान श्रीकृष्ण की बाल-लीला ने माँ यशोदा को कभी अत्यन्त विस्मित किया, कभी गोपियों की उलाहना सुनवाकर कष्ट दिया, तो कभी अत्यन्त आनन्द प्रदान किया। उस सुख के समक्ष कोटि-कोटि सुख न्यौछावर हैं, उस रूप के सम्मुख कोटि-कोटि अनंग-रूप न्यौछावर हैं। भगवान श्रीकृष्ण की लीला के अप्रतिम रचनाकार सूरदासजी ने श्रीकृष्ण की बाल-लीला का अद्‌भुत वर्णन किया है। विलक्षण दृष्टि और काव्य-रस के धनी कृष्ण-भक्त सूरदासजी सूरसागर के पदों में भगवान की बाल लीला का वर्णन करते हुए कहते हैं –

सोभित कर नवनीत लिये।
घुटुरुनि चलन रेनु-तन-मंडित, मुख दधि लेप किये।।
चारु कपोल, लोल लोचन गोरोचन-तिलक दिये।
लट-लटकनि मनु मत्त मधुप गन मादक मधुहिं पिये।
कठुला-कंठ बज्र केहरि नख, राजत रुचिर हिए।
धन्य सूर एको पल इहिं सुख, का सुख कल्प जिये।।[१]

– हाथ में नवनीत लिए हुए बालकृष्ण सुशोभित हो रहे हैं। उनका तन धूल-धूसरित है और वे मुख में दधि लपेटे घुटनों के बल चल रहे हैं। उनके कपोल सुन्दर हैं, नेत्र चंचल हैं और गोरोचन का तिलक लगा हुआ है। उनके केश ऐसे लटक रहे हैं, मानो उन्मत्त भ्रमर मादक मधुपान किये हों। उनके गले में कठुला तथा वक्षस्थल पर सुन्दर हीरा और बघनखा सुशोभित हो रहे हैं। इस पद के अन्त में सूरदासजी कहते हैं – एक क्षण का यह दर्शन-सुख धन्य है, सैकड़ों कल्प जीने से क्या लाभ?

भगवान के इस बाल रूप का दर्शन सर्वप्रथम भक्त के हृदय में भगवान के प्रति प्रेम उत्पन्न करना है। सूरदासजी की सूक्ष्म दृष्टि ने यशोदा मैया में इसे पाया –

बाल विनोद खरो जिय भावत।
कमलनयन माखन माँगत हैं, करि करि सैन बतावत।
सूरदास स्वामी सुख सागर जसुमति प्रीति बढ़ावत।।[२]

– कृष्ण की बाल-क्रीड़ाएँ बहुत अच्छी लगती हैं। कमललोचन कृष्ण संकेत कर करके मक्खन माँग रहे हैं, सूरदासजी कहते हैं कि मेरे स्वामी सुख के सागर हैं, वे माँ यशोदा की प्रीति को, प्रेम को और बढ़ा रहे हैं।

भगवान श्रीकृष्ण के मनोहारी बाल-रूप का सौन्दर्य, सौष्ठव ही ऐसा है कि कोटि जप-ध्यान, योग से भी जो मन भगवान में एकाग्र नहीं होता, वह भी उनके बाल-रूप को देखकर सहजता से उनमें तल्लीन हो जाता है। साथ ही यह अतृप्ति में तृप्ति का बोध करता है। सूरदासजी अपने पद में इसका निर्देश करते हैं –

सोभा कहत न आवै।
अंचवत अति आतुर लोचन पुट मन न तृप्ति को पावै।।

अत्यन्त भव्य रूप की सुन्दरता के दर्शन को व्यग्र मन देखकर भी तृप्त नहीं होता। उसे निरन्तर देखते रहने की इच्छा होती है। ऐसा है भगवान के बालरूप का सौन्दर्य !

भगवान के इस रूप को देखकर, ऋषि-मुनि-यति-अपनी योग-साधना, विराग विस्मृत कर इस पर मुग्ध हो गये। भगवान शिव तो कैलाश से दर्शन करने आ गये। अन्य देवगण भी अपने-अपने अनुसार आकर दर्शन कर जाते हैं और उनकी रूप माधुरी का आनन्द लेते हैं। श्रीकृष्ण के इस विलक्षण चरित्र का अनुध्यान करते हुए सूरदासजी कहते हैं –

सूर विचित्र कान्ह की बानक बानी कहत नहीं आवै।
बाल दसा अवलोकि सकल मुनि जोग बिरति बिसरावैं।।[३]

इस प्रकार हम देखते हैं कि भगवान का मनोहारी बाल रूप किस प्रकार सुर-नर-मुनियों को आकर्षित और आनन्दित करता है।

कृष्णावतरण सबको आनन्द, सुख देने हेतु है

भगवान श्रीकृष्ण का अवतरण उनकी लीला का उद्देश्य माता-पिता, सखा, ग्वाल बाल ब्रजवासी सबको आनन्द, सुख प्रदान करना है। इसका संकेत भी सूरदासजी ने अपने विभिन्न पदों में, विभिन्न स्तरों पर किया है। वे कहीं – 'सूरदास स्वामी सुख सागर जसुमति प्रीति बढ़ावत', तो कहीं कहते हैं – '**सूरदास प्रभु गोकुल प्रगटे मेटन कौं भू भार**',[४] अर्थात् प्रभु धरा के भार को समाप्त करने हेतु गोकुल में प्रकट हुए। एक स्थान पर कहते हैं – '**सूरदास प्रभु गोकुल प्रगटे मथुरा गर्व प्रहारी**'[५] अर्थात् भगवान मथुरा (कंस) के गर्व का नाश करने के लिये गोकुल में अवतरित हुए। अन्यत्र कहते हैं – **'सूरदास विलास ब्रजहित प्रगटे आनन्द कंद'**[६] अर्थात् आनन्द निधान आनन्द कंद भगवान ब्रज में विविध सुख-विलास देने हेतु प्रगट हुए। एक स्थान पर उन्होंने कहा –

गोकुल प्रगट भये हरि राई।
अमर उधारन असुर संहारन अंतरजामी त्रिभुवन राई।।[७]

– सुर-उद्धार और असुर-संहार हेतु अन्तर्यामी त्रिलोकी नाथ हरि गोकुल में प्रगट हुए।

इस प्रकार भगवान के आविर्भाव के कई उद्देश्यों को भी यहाँ उद्धृत किया गया, जो गीता और रामचरितमानस में वर्णित अवतार-प्रयोजनों से किंचित् पृथक् भी है।

वात्सल्य-भाव के साधक सावधान !

किसी भाव को लेकर जब हम साधना करते हैं, तो हमें उस भाव के निर्देशों का पालन पूर्ण रूप से करना पड़ता है। इसमें बड़े-बड़े साधक भी कभी भ्रमित हो जाते हैं। वात्सल्य भाव की साधना में सदा इस बात का ध्यान रखना पड़ता है कि भगवान छोटे बालक हैं, उन्हें सदा हमारे संरक्षण की आवश्यकता है, जैसे अबोध बालक की रक्षा माता-पिता करते हैं, लेकिन भक्त कभी-कभी इतना सुविधावादी हो जाता है कि जब उसे आवश्यकता पड़ती है, तो वह सगुण-साकार उपासना करता है और भगवान से अपना काम करा लेता है, किन्तु जब सगुण-साकार भगवान को कुछ खाना-पीना चाहिए, तब वह कहने लगता है – आप तो निराकार हैं। आप सबमें हैं, संसार का सब कुछ आपका ही है, मैं आपको क्या भोग लगाऊँ? कहीं भी जाकर खा लीजिए, आदि। ऐसी चातुरी भक्ति वर्षों की साधना को एक पल में सर्वनाश कर देती है।

एक बार हिमालय के एक वृद्ध सन्त ने बड़ी मार्मिक घटना सुनाई थी – एक विरागी सन्त थे, जो भगवान कृष्ण की वात्सल्य भाव से उपासना करते थे। उन्होंने १२ वर्षों तक बालरूप कृष्ण की निष्ठा से पूजा की, तो भगवान बालरूप में प्रकट होकर उनके साथ रहने लगे। अब तो महात्मा बड़े आनन्द में रहने लगे। भगवान के साथ खेलना, उनको स्नान कराना, भोग लगाना, जो माँगे उन्हें खिलाना, उन्हें घुमाना, ये सब करते थे और अत्यन्त आनन्द का अनुभव करते थे। वर्षों बीत गये इस आनन्द में। एक दिन दुर्भाग्य का क्षण आया। बालरूपधारी भगवान कुटिया के बाहर थे, तभी एक बिल्ली दिखाई दी। बाल भगवान ने डरकर जोर से रोते हुए चिल्लाकर कहा – बाबा ! इससे मुझे डर लग रहा है। महात्मा ने आकर देखा, तो वह बिल्ली थी। महात्मा ने कहा – वाह रे कान्हा ! तुमने बचपन में इतने असुरों बकासुर आदि को मारा और आज कहते हो बिल्ली से डर लग रहा है। यह क्या नाटक है? बस, भगवान कुपित हो गये। उन्होंने तुरन्त कहा – तो जाओ, उन्हीं को तपस्या करके प्राप्त करो और तत्क्षण अन्तर्धान हो गये। महात्मा तड़पते रहे, बिलखते रहे, लेकिन भगवान प्रकट नहीं हुए। एक भूल वर्षों की साधना को नष्ट कर सकती है। अत: वात्सल्य भाव के साधक को भगवान के बाल-हठ को भी बड़े प्रेम से सुलझाना पड़ता है। जैसे यशोदा मैया कृष्ण के 'मैया चन्द खिलौना लइहों' हठ को सुलझाती हैं। उन्हें अपने पुत्र रूप में ही देखकर उनका सदा ध्यान रखती हैं।

भगवान श्रीकृष्ण के अवतरण-दिवस पर उनका यह भव्य बालरूप समस्त लोकवासी को आनन्दित करे और उनमें प्रेम-वर्द्धन करे, यही हमारी उनसे प्रार्थना है। कितना सुन्दर रूप है उनका। तभी तो कृष्णरूप माधुरी में लीन बाबा सूरदास ने लिखा – **सोभित कर नवनीत लिये**। ○○○

सन्दर्भ सूत्र – १. सूरसागर सटीक, १०म स्कन्ध, पद-९९, **२.** वही, १०/१०२, **३.** वही, १०/९७, **४.** वही, १०/१५, **५.** वही, १०/४), **६.** वही, १०/५, **७.** वही, १०/१३.

भारत की नारियाँ

स्वामी विवेकानन्द

(यह व्याख्यान स्वामी विवेकानन्द जी ने अमेरिका के केम्ब्रिज नगर में १७ दिसम्बर, १८९४ ई. को दिया था। इसे मिस फ्रांसिस विल्लार्ड के स्टेनोग्राफर ने लिपिबद्ध किया। यह स्वामीजी की Complete Works of Swami Vivekananda के नवें खण्ड में प्रकाशित है। इसका हिन्दी अनुवाद 'विवेक-ज्योति' के पूर्व-सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

(गतांक से आगे)

राजपूताना में एक विचित्र कहावत प्रचलित है। भारत में एक जाति है, जिसे दुकानदार या व्यापारी कहा जाता है। उनमें से कुछ बड़े ही बुद्धिमान होते हैं; लेकिन हिन्दू लोग उन्हें चतुर मानते हैं। परन्तु एक विचित्र बात यह है कि उसी जाति की महिलाएँ पुरुषों जैसी होशियार नहीं होतीं। जबकि दूसरी ओर राजपूत पुरुष अपनी स्त्रियों की तुलना में आधे बुद्धिमान भी नहीं होते।

राजपूताना में प्रचलित कहावत इस प्रकार है, ''मेधावी नारी मन्दबुद्धि पुत्र को जन्म देती है और मन्दबुद्धि नारी मेधावी पुत्र को।'' वास्तविकता तो यह है कि राजपूताना की कोई रियासत जब कभी किसी महिला द्वारा संचालित हुई है, तो उसका प्रशासन बड़ी कुशलतापूर्वक हुआ है।

अब हम एक अन्य श्रेणी की महिलाओं के प्रसंग पर आते हैं। निरीह हिन्दू जाति ने बीच-बीच में वीरांगना नारियों को भी जन्म दिया है। तुम लोगों में से कुछ ने उस नारी (झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई) का नाम सुना होगा, जिन्होंने १८५७ ई. के गदर के समय अंग्रेज सैनिकों के साथ युद्ध किया था। उन्होंने आधुनिक सेनाओं का नेतृत्व और तोपखानों का संचालन किया और सर्वदा सामने रहकर अपनी सेना का मार्गदर्शन करती रही। दो वर्षों तक मोर्चा सँभाले रखा था। वह रानी एक ब्राह्मण बालिका थी।

उस युद्ध में मेरे एक परिचित व्यक्ति के तीन पुत्र मारे गये थे। जब वे उनके बारे में बातें करते, तो शान्त रहते; परन्तु जब वे इस रानी के बारे में बोलते, तो उनकी आवाज... वे कहते कि वह एक मानवी नहीं, बल्कि एक देवी थी। उस वृद्ध सैनिक का विचार था कि उन्होंने उससे बेहतर सैन्य-संचालन नहीं देखा।

चाँद बीबी या चाँद सुलताना (१५४६-१५९९) की कहानी भी भारत में सर्वविदित है। वह गोलकुण्डा की रानी थी, जहाँ हीरों की खान स्थित है। वह महीनों तक अपनी रक्षा करती रही। आखिरकार किले की दीवार एक जगह से टूट गयी। जब अंग्रेजों की सेना उसके भीतर घुसी, वह पूरी तरह से जिरह-बख्तर पहने हथियारों से लैश खड़ी थी और उसने आक्रान्ताओं को वापस लौटने को मजबूर कर दिया।

इसके भी परवर्ती काल में, कदाचित् तुम्हें यह जानकर आश्चर्य होगा कि एक महान अंग्रेज सेनानायक को एक बार एक सोलह साल की हिन्दू बालिका का सामना करना पड़ा था।

राजनीतिक कुशलता में, जमीन-जायदाद की व्यवस्था में, राजकीय प्रशासन में और यहाँ तक कि युद्ध-संचालन में महिलाओं ने स्वयं को पुरुषों से बेहतर नहीं, तो भी बराबरी का जरूर सिद्ध किया। भारत में निस्सन्देह ऐसा होता आया है। जब भी उन्हें अवसर मिला तब-तब उन्होंने पुरुषों के समान ही अपनी योग्यता प्रमाणित की है। एक अन्य बात उनके पक्ष में जाती है और वह यह कि वे कदाचित ही कभी आदर्शच्युत होती हैं। नैतिकता उनका स्वभाव सिद्ध गुण है और वे इससे विचलित नहीं होतीं। इस प्रकार वे अपनी रियासत के संचालक तथा प्रशासक के रूप में – कम-से-कम भारत में – अपने को पुरुषों से भी उत्कृष्ट सिद्ध करती हैं। जॉन स्टुअर्ट मिल ने इस तथ्य का उल्लेख किया है।

आज भी हम भारतीय महिलाओं को बड़ी कुशलता के साथ विशाल सम्पत्तियों की व्यवस्था करते हुए पाते हैं। मेरे जन्म स्थान में ऐसी ही दो महिलाएँ निवास करती थीं, जो

विशाल जमींदारियों की स्वामिनी और विद्या एवं कला की संरक्षिका थीं। इन्होंने अपनी स्वयं की बुद्धि लगाकर अपनी सम्पत्तियों का प्रबन्ध किया और व्यवसाय की हर बारीकी का ध्यान रखा।

प्रत्येक राष्ट्र में अपनी एक चारित्रिक विशेषता विकसित होती है, जो उसे बाकी मानवता से पृथक करती है; ऐसा ही धर्म के क्षेत्र में, राजनीति के क्षेत्र में, नर-नारियों के क्षेत्र में और चरित्र के क्षेत्र में होता है। एक राष्ट्र एक चारित्रिक विशेषता विकसित करता है, तो दूसरा राष्ट्र दूसरी विशेषता को। पिछले कुछ वर्षों से दुनिया में इस तथ्य को स्वीकृति मिलने लगी है।

भारतीय नारियों ने अपने में जो विलक्षणता विकसित की है और जो उनके जीवन का मुख्य केन्द्र है, वह है – मातृभाव। यदि तुम किसी हिन्दू के घर में प्रवेश करो, तो तुम वहाँ (पश्चिमी देशों) के समान पति के साथ बराबर का हकदार नहीं देखोगे, परन्तु वहाँ तुम्हें माँ के रूप में हिन्दू गृहस्थी का मानो स्तम्भ दिखायी देगा। पत्नी को सबकुछ पाने के लिये माँ बनने तक इन्तजार करना होगा।

यदि कोई व्यक्ति संन्यासी बन जाता है, तो सर्वप्रथम उसके पिता को ही उसका अभिवादन करना होगा, क्योंकि संन्यासी बन जाने के कारण वह पिता से भी उच्च स्थानीय बन गया है। परन्तु यदि वह माँ के पास जाता है, तो भले ही वह संन्यासी हो, उसे घुटने टेककर माँ को प्रणाम करना होगा। इसके बाद वह उनके चरणों के नीचे एक छोटी-सी कटोरी रखेगा, वे उसमें अपना अँगूठ डुबाएँगी और वह उसे पी जायेगा। एक हिन्दू पुत्र बड़े आनन्दपूर्वक हजारों बार ऐसा ही करता है।

सदाचारों की शिक्षा देते हुए वेद इन शब्दों से शुरुआत करते हैं, ''मातृदेवो भव'' – माता तुम्हारे लिए ईश्वर हो! और उन्हें ऐसा माना भी जाता है। जब हमलोग भारतीय नारियों पर चर्चा करते हैं, तो हमारा तात्पर्य नारी के मातृभाव से होता है। नारियों का महत्त्व इसलिये है, क्योंकि वे मानव-जाति की माताएँ हैं। हिन्दुओं का यही भाव है।

मेरे गुरुदेव छोटी-छोटी बालिकाओं का हाथ पकड़कर उन्हें एक आसन पर बैठा देते और उनके चरणों में फूल चढ़ाने के बाद उन्हें प्रणाम करते हुए उन छोटी बालिकाओं की वास्तविक पूजा करते; क्योंकि वे जगदम्बा की प्रतिमूर्तियाँ थीं।

हमारे परिवारों में माँ को भगवान मानते हैं। इसके पीछे भाव यह है कि इस संसार में एकमात्र सच्चा और पूर्णत: नि:स्वार्थ प्रेम 'माँ' में ही देखने को मिलता है, जो सर्वदा हमसे प्रेम करती है और हमारे लिए कष्ट उठाती रहती है। माँ के अन्दर हमें जो प्रेम दिखायी देता है उससे बढ़कर दूसरा कौन-सा प्रेम ईश्वरीय प्रेम की झलक दे सकता है? इस प्रकार एक हिन्दू के लिये पृथ्वी पर माँ ही ईश्वर की प्रतिमूर्ति है।

''केवल वही बालक ईश्वर को समझ सकता है, जिसे सर्वप्रथम अपनी माँ से शिक्षा मिली हो।'' मैंने हिन्दू नारियों की निरक्षरता के विषय में निरर्थक कहानियाँ सुनी हैं। १० वर्ष की आयु तक मुझे अपनी माँ से शिक्षा मिली। मैंने अपनी नानी और परनानी को जीवित देखा है और मैं निश्चय के साथ कह सकता हूँ कि मेरी पूर्वज स्त्रियों में कोई भी ऐसी नहीं थी, जो पढ़ या लिख न सकती हो या जिन्हें दस्तावेजों पर अँगूठे की छाप लगानी पड़ती हो। यदि उनमें से कोई निरक्षर होती, तो मेरा जन्म ही सम्भव नहीं होता। मेरी जाति के नियमों के अनुसार यह अनिवार्य था।

कभी-कभी मुझे ऐसी मनगढ़न्त कथाएँ सुनने को मिलती हैं, जैसे कि मध्य काल में हिन्दू नारियों के पढ़ने-लिखने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया था। मैं तुम्हें सर विलियम हंटर द्वारा लिखित, History of the English People (अंग्रेज जाति का इतिहास) देखने की सलाह दूँगा, जिसमें उन्होंने ऐसी भारतीय नारियों का उल्लेख किया है, जो गणना के द्वारा सूर्य-ग्रहण की तिथि बता सकती थीं।

कुछ लोगों का कहना है कि माँ के प्रति अति श्रद्धा उसे स्वार्थी बना देती है और माँ के द्वारा बच्चों के प्रति अत्यधिक लाड़-प्यार उन्हें स्वार्थी बना देता है। परन्तु मैं इन सब बातों में विश्वास नहीं करता। मैं आज जो कुछ भी हूँ, उसे मुझे अपनी माँ से मिले हुए प्रेम ने बनाया है और मुझ पर अपनी माँ का जो ऋण है, उसे मैं कभी चुका नहीं सकूँगा।

हिन्दू माँ क्यों पूजनीय है? हमारे ऋषियों ने इसके पीछे एक कारण ढूँढ़ने का प्रयास किया है और उनका निष्कर्ष इस प्रकार है, हम लोग अपने आप को आर्य जाति का मानते हैं। आर्य किसे कहते हैं? उसे, जिसका जन्म धर्म के माध्यम से हुआ है। इस देश के लिए कदाचित् यह विषय थोड़ा विचित्र है, परन्तु भाव यह है कि व्यक्ति का जन्म

धर्म तथा प्रार्थनाओं के द्वारा होना चाहिए। यदि तुम हमारे स्मृति-ग्रन्थों को देखो तो वहाँ तुम्हें – गर्भावस्था में माँ के आचरण का शिशु के चरित्र पर प्रभाव – अध्याय-पर-अध्याय इसी विषय पर चर्चा मिलेगी।

मैं जानता हूँ कि मेरे जन्म के पहले मेरी माता उपवास, प्रार्थना तथा और भी कितनी ही चीजें करती थीं, जिन्हें मैं पाँच मिनट भी नहीं कर सकता। उन्होंने ऐसा दो वर्ष किया। मेरा विश्वास है कि मुझमें जो भी धार्मिक संस्कार हैं, उसी के फलस्वरूप हैं। आज मैं जो भी हूँ, उसका निर्माण करने हेतु मेरी माँ ही प्रयासपूर्वक मुझे इस संसार में लायीं। मुझमें जो कुछ भी सद्‌गुण हैं, वह अचेतन रूप से नहीं, अपितु चेतन रूप से मुझे अपनी माँ से प्राप्त हुए हैं।

भौतिक रूप से जन्म लेनेवाला नहीं, अपितु आध्यात्मिक रूप से जन्म लेनेवाला शिशु 'आर्य' कहलाता है। पवित्र सन्तानों को जन्म देने के लिए माँ को भी एक पवित्र-जीवन बिताना पड़ता है; और इस तरह के कष्ट उठाने के कारण एक हिन्दू माता का अपनी सन्तान पर विशेष अधिकार होता है। उसकी नि:स्वार्थता आदि अन्य गुण तो दूसरे देशों में भी दीख पड़ते हैं, परन्तु हमारे परिवारों में माँ को सर्वाधिक कष्ट उठाना पड़ता है।

(घर में) माँ का भोजन सबके अन्त में होता है। तुम्हारे देश (अमेरिका) में मुझसे अनेकों बार पूछा गया है कि हिन्दू पति भोजन के लिए अपनी पत्नी के साथ क्यों नहीं बैठता? क्या इसके पीछे यह भाव है कि पति उसे एक निकृष्टतर प्राणी समझता है? यह व्याख्या बिलकुल गलत है। तुम जानते हो कि (हमारे यहाँ) सूअर के बाल बड़े अशुद्ध माने जाते हैं। उससे बने हुए ब्रश के द्वारा हिन्दू अपने दाँतों को साफ नहीं कर सकता। इसलिए इसके लिए पौधों की डाली का उपयोग करते हैं। किसी विदेशी यात्री ने एक हिन्दू को उससे दाँत माँजते हुए देखा और लिख डाला, ''एक हिन्दू सुबह उठता है, एक पौधा लेता है, उसे चबाता है और निगल जाता है !'' उसी प्रकार, कुछ लोगों ने देखा कि पति-पत्नी एक साथ भोजन नहीं करते और उन लोगों ने अपनी स्वयं की व्याख्या गढ़ डाली। इस संसार में निरीक्षण करनेवाले अति-अल्प हैं, जबकि व्याख्याकारों की भरमार है – मानो यह संसार उनकी व्याख्याओं के अभाव में मरा जा रहा है। इसलिए कभी-कभी मैं सोचता हूँ कि छापेखाने का आविष्कार कोई विशुद्ध वरदान नहीं था। (अर्थात् कुछ दृष्टियों से यह अभिशाप भी है)। वास्तविकता तो यह है कि जैसे तुम्हारे देश में पुरुषों के समक्ष महिलाओं के लिए कोई-कोई कार्य अनुचित माना जाता है, वैसे ही हमारे देश में पुरुषों के समक्ष महिलाओं के द्वारा कुछ चबाते रहना अशिष्टता का सूचक है। एक महिला अपने भाइयों के समक्ष खा सकती है, परन्तु यदि उसके भोजन करते समय उसका पति आ जाये, तो वह तत्काल खाना बन्द कर देती है और पति तुरन्त बाहर चला जाता है। हमारे यहाँ खाने की मेजें नहीं होतीं। किसी व्यक्ति को जब भी भूख लगती है, वह घर में आता है और भोजन करके बाहर चला जाता है। इस बात पर विश्वास मत करना कि हिन्दू पति अपनी पत्नी को अपने साथ मेज पर नहीं बैठाता। क्योंकि उसके यहाँ मेज ही नहीं होती।

रसोई पक जाने के बाद भोजन का पहला भाग अतिथियों तथा गरीबों के लिए होता है। दूसरा भाग पशु-पक्षियों के लिये, तीसरा भाग बच्चों के लिए, चौथा भाग पति के लिए और अन्तिम भाग माँ (स्त्री) के लिए निर्धारित होता है। मैंने अपनी माँ को कितनी ही बार दोपहर में दो बजे भोजन का पहला कौर मुख में डालते हुए देखा है। हम लोग सुबह दस बजे ही खा लेते थे, जबकि वे दो बजे खाती थीं, क्योंकि इसी दौरान उन्हें बहुत-से कार्य करने होते थे। (जैसे कि) कोई अतिथि आकर दरवाजा खटखटा देता और रसोईघर में केवल माँ के लिये ही खाना बचा हुआ रहता। वे स्वेच्छापूर्वक उसे दे देतीं और फिर अपने लिये कुछ प्रबन्ध करने की चेष्टा करतीं। ऐसा ही उनका दैनन्दिन जीवन था और वे इसे पसन्द करती थीं। इसीलिये हम लोग माताओं की देवियों के रूप में पूजा करते हैं।

कितना अच्छा होता कि आप (अमेरिकी महिलाएँ) भी केवल (पत्नी के रूप में) प्रेम और निर्भरता की कम और (माँ के रूप में) पूजित होने की अधिक अपेक्षा करतीं! आप लोग मानवजाति का एक अंग हैं, परन्तु बेचारा हिन्दू आपकी भावनाओं को समझने में असमर्थ है। परन्तु जब आप कहती हैं, 'हम माताएँ हैं और हमारा यह आदेश है', तो वह सिर झुकाकर स्वीकार कर लेता है। यही वह पहलू है, जिसका हिन्दुओं ने विकास किया है। **(क्रमशः)**

श्रीरामकृष्ण-गीता (२)

स्वामी पूर्णानन्द, बेलूड़ मठ

(स्वामी पूर्णानन्द जी रामकृष्ण संघ के वरिष्ठ संन्यासी हैं। उन्होंने २९ वर्ष पूर्व में इस पावन श्रीरामकृष्ण-गीता ग्रन्थ का शुभारम्भ किया था। इसे सुनकर रामकृष्ण संघ के पूज्य वरिष्ठ संन्यासियों ने इसकी प्रशंसा की है। विवेक-ज्योति के पाठकों के लिए बंगला भाषा से इसका हिन्दी अनुवाद रामकृष्ण मिशन आश्रम, नारायणपुर के स्वामी कृष्णामृतानन्द जी ने की है। – सं.)

श्रीमहाराज उवाच

शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि कलिमलापहाकथाम्।
ईशस्य रामकृष्णस्य परमस्य दयानिधेः।।६।।

अन्वय : श्रीमहाराजः उवाच (श्रीमहाराज ने कहा) वत्स (वत्स) परमस्य (परम) दयानिधेः (दया के सागर) ईशस्य (भगवान) रामकृष्णस्य (श्रीरामकृष्ण की) कलि-मल-अपहा-कथाम् (कलिकलुषनाशिनी कथा) प्रवक्ष्यामि (सुना रहा हूँ) एकाग्रतया (एकाग्रचित्त होकर) शृणु (श्रवण करो)।।६।।

अनुवाद : श्रीमहाराज ने कहा – वत्स! मैं परम दयानिधि भगवान श्रीरामकृष्ण की कलिकलुषनाशिनी कथा सुना रहा हूँ। एकाग्रचित्त होकर श्रवण करो।।६।।

श्रीरामकृष्ण उवाच

पुमान् स्वात्मनि विज्ञाते शक्यः स्यात्ज्ञातुमीश्वरम्।
कोऽहमिति विचारेणाहं सम्यङ् नास्ति किञ्चन।।७।।

अन्वय : श्रीरामकृष्णः उवाच (श्रीरामकृष्ण ने कहा) पुमान् (मनुष्य) स्व-आत्मनि (स्वयं को) विज्ञाते (पहचान लेने से) ईश्वरम् (ईश्वर को) ज्ञातुम् (पहचान) शक्यः (सकता) स्यात् (है) अहम् (मैं) कः (कौन हूँ) इति (यह) सम्यक् (अच्छी तरह से) विचारेण (विचार करने पर) इदम् एव ज्ञायते (यह देखा जाता है) अहम् (मैं) इति (जैसी) किम्-चन (कोई) वस्तु (वस्तु) न अस्ति (है ही नहीं)।।७।।

अनुवाद : श्रीरामकृष्ण ने कहा – मनुष्य स्वयं को पहचान लेने से ईश्वर को भी पहचान सकता है। मैं कौन हूँ? अच्छी तरह से विचार करने पर यह देखा जाता है 'मैं' जैसी कोई वस्तु है ही नहीं।।७।।

अहं कतममेतेषु कराङ्घ्र्यस्त्रपलादिषु।
यथासारत्वगेवान्ते पलाण्डोस्त्वग्विमोचने।।
कृते तद्वद्विचारेऽहं किञ्चन नावशिष्यते।।८।।

अन्वय : कर-अंघ्रि-अस्त्र-पल-आदिषु (हाथ, पैर, रक्त, मांस इत्यादि) एतेषु (इनमें से) कतमम् (कौनसा) अहम् (मैं) यथा (जैसे) पलाण्डोः (प्याज के) त्वक्-विमोचने (छिलके उतारते समय) अन्ते (अन्त में) असार-त्वक्-एव (असार छिलका ही मात्र) निर्गच्छति (निकलता है) तत्-वत् (उसी प्रकार) विचारे कृते (विचार करने पर) अहम् (मैं) इति (जैसा) किञ्चन (कुछ भी) अवशिष्यते न (अवशेष नहीं रह जाता)।।८।।

अनुवाद : हाथ, पैर, रक्त, मांस इत्यादि इनमें से 'मैं' कौन है? जैसे प्याज के छिलके उतारते-उतारते अन्त में असार छिलका ही मात्र निकलता है, उसी प्रकार विचार करने पर (अन्त में) 'मैं' जैसा कुछ भी शेष नहीं रह जाता।।८।।

यदेवान्ते स आत्मा तच्चैतन्यमवशिष्यते।
दूरीभूते ममाहंत्वे ईश्वरः प्रकटो भवेत।।९।।

अन्वय : यत्-एव (जो भी कुछ) अन्ते (अन्त में) अवशिष्यते (अवशिष्ट रहता है) सः (वही) आत्मा (आत्मा) चैतन्यम् (चैतन्य) मम-अहंत्वे (मेरा और मैं – यह भाव) दूरीभूते (दूर होने पर) ईश्वरः (ईश्वर) प्रकटः (प्रकट अर्थात् दृश्यमान) भवेत् (होते हैं)।।९।।

अनुवाद : जो भी कुछ अन्त में रहता है, वही आत्मा, चैतन्य है। 'मेरा' और 'मैं' यह भाव दूर होने पर ईश्वर प्रकट अर्थात् दृश्यमान होते हैं।।९।। **(क्रमशः)**

आध्यात्मिक जिज्ञासा (६८)

स्वामी भूतेशानन्द

(४४)

प्रश्न – महाराज ! आप उस दिन कह रहे थे, ''वेद विद्यालय के बच्चे मजाक में कुछ कहने पर बुरा नहीं मानते हैं, केवल हँसते हैं। ऐसा मत सोचना कि साधु लोग केवल हँसी-मजाक ही करते हैं, निश्चय ही उसमें कुछ आध्यात्मिकता भी है।''

'ह्युमर इज क्राइस्ट' पुस्तक में मैं एक भी कौतुक, हँसी-मजाक नहीं देखा। वहाँ कोई सरस चर्चा खोजने पर नहीं मिली। उस दिन आप कुछ छोटे बच्चों को बोल रहे थे, साधु लोग केवल हँसी-मजाक में मग्न नहीं रहते हैं, उनमें कुछ आध्यात्मिकता सदा ही रहती है। क्या आप इस विषय की थोड़ी विस्तृत व्याख्या करेंगे?

महाराज – अधिक बढ़ाओ मत (हँसी), यदि वैसा करोगे, तो बहुत कुछ छूट सकता है।

– हमलोग आपसे सुनना चाहते हैं।

महाराज – तुम तो स्वयं अभी एक धर्म-प्रचारक हो। एक धर्म-प्रचारक के सामने में कैसे धर्म का उपदेश दूँगा? (सभी हँसते हैं)

– किन्तु आपके पास मैं एक मूर्ख हूँ।

महाराज – मूर्ख ! तो क्या हमलोगों ने एक मूर्ख को धर्म-प्रचार के लिए विदेश में भेजा है?

– हमलोग सचमुच जानना चाहते हैं। अब वे लोग भी कहानी की सहायता ले रहे हैं। स्वामीजी ने कहा है, यदि ईसाई एक कहानी कहते हैं, तो हिन्दू २० कहानी कहते हैं। इसलिए वे लोग भी अब धर्मोपदेश में कौतुकता, सरसता लाने का प्रयास कर रहे हैं। इसलिए हमलोग जानना चाहते हैं कि कौतुकता, सरसता में आध्यात्मिक स्पर्श कैसा है? क्योंकि शास्त्र में हमलोग हास्य-कौतुक को देखते हैं। वे लोग कहते हैं – तुमलोग हँसो, किन्तु हमलोग नहीं हँसते।

महाराज – क्योंकि उनलोगों में हँसी-मजाक की बात ही कम है। जिनमें जो है, वही वे लोग देखते हैं। यदि तुम ठीक से देखो, तो सम्पूर्ण पृथ्वी को ही अपने में देख सकोगे। तुम्हारी दृष्टि ही तुम्हारी पृथ्वी का निर्माण करेगी। अन्य लोगों के लिये पृथ्वी वैसी नहीं होगी। ठीक है न?

बादशाह अकबर एक बार लैला को देखना चाहते थे। अत: लैला को अकबर के पास ले जाया गया। देखने के बाद वे मजनू को कह रहे हैं – इस कुरूप लड़की में क्या देखकर तुम आकर्षित होते हो? मजनू ने कहा – जहाँपनाह! आप मजनू की दृष्टि से देखिये, तभी आप सौन्दर्य का अनुभव कर पायेंगे। अर्थात् सौन्दर्य दृष्टिकोण में छिपा है। एक ही वस्तु एक व्यक्ति की दृष्टि में सुन्दर है, किन्तु दूसरे के लिए खराब है। मनुष्य संसार को सुन्दर तब देखता है, जब वह सुखी रहता है। किन्तु जब दुखी होता है, तब संसार उसे विनाशकारी लगता है और सोचता है कि यह निश्चय ही किसी शैतान द्वारा निर्मित है। इसलिये संसार को जो जैसा देखता है, संसार ठीक वैसा नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी दृष्टि से संसार का दर्शन करता है।

मान लो, अँधेरे में एक मानव थोड़ी दूर पर खड़ा है। कोई कहता है – यह एक पेड़ है, कोई कहता है – यह एक योगी है। दूसरा कोई कहता है – यह एक शराबी है और कोई कहता है चोर है। एक ही वस्तु है, किन्तु विभिन्न लोग विभिन्न प्रकार से उसकी व्याख्या कर रहे हैं, जिसे जैसी वह दीख रही है। वास्तव में संसार एक दृश्यमान वस्तु है, विभिन्न प्रकार के दृष्टिकोण से विभिन्न रूप में प्रतिभात हो रहा है। वास्तव में इन सबकी समष्टि और उससे भी कुछ अधिक है यह संसार।

महाराज – यह प्रशंसा है या कुछ दूसरा?

– क्या इसे ही कहते है अनुभूति। कैसी अद्‌भुत व्याख्या है !

– प्रशंसा है। मैं आपकी पुस्तक का एक निष्ठावान पाठक हूँ। सचमुच यह एक अत्यन्त सुन्दर प्रस्तुति है।

महाराज – कोई-कोई कहते हैं – सब कुछ मुद्रण-अक्षर में न रहना ही अच्छा है।

– कौन ऐसा कहते हैं?

महाराज – यह मैं नहीं जानता। किन्तु कोई-न-कोई कहता ही है।

– स्वामीजी ने 'श्रीम' को कहा था – श्रीरामकृष्ण-वचनामृत लिखकर आप ऐसा मत सोचिएगा कि सभी आपकी प्रशंसा करेंगे। कोई-कोई इसलिए अभिशाप देंगे कि मेरे पति प्राय: ही श्रीरामकृष्ण के पास जाते थे। वे 'वचनामृत' पढ़ने के बाद साधु हो गये हैं, इसलिये मैं अभिशाप दे रही हूँ।

महाराज – एक घटना की बात कह रहा हूँ। यह कोई काल्पनिक घटना या कहानी नहीं है। एक सज्जन कह रहे हैं – मिशन हमारे लड़के को खराब कर रहा है। अन्य एक सज्जन ने मुझे कहा था – लड़के को समझाइये कि गृहस्थ जीवन साधु-जीवन की अपेक्षा अच्छा है। मैंने उनको कहा था – विभिन्न लोगों का दृष्टिकोण विभिन्न होता है। एक ही वस्तु हो सकता है, किसी एक के लिये अच्छी हो, किन्तु दूसरे के लिये हो सकता है भिन्न हो। किन्तु वे हमारी बात से सन्तुष्ट नहीं हो सके। लगभग अर्द्धरात्रि तक वे उस एक ही बात को कहकर हमें खिन्न कर दिये कि लड़के को कहिये – साधु-जीवन जीवन का उद्देश्य नहीं हो सकता, गृहस्थ जीवन ही आदर्श जीवन है। आधी रात बीतने के बाद मैंने कहा – यह बात कहने के लिये सबसे पहले मुझे ही साधु जीवन का परित्याग करना होगा। नहीं तो मेरी बात का कोई मूल्य नहीं होगा। तब वे चुप हुए।

– आप और एक काम कर सकते थे। आलमबाजार मठ में स्वामीजी को तर्क-युद्ध में पराजित करने के लिये एक पंडित आये थे। उस समय स्वामीजी गंगा-स्नान करने जा रहे थे। उन्होंने उस व्यक्ति से पूछा – ''क्या आपके पास कागज पेन्सिल है?'' उन्होंने कहा – ''हाँ है।'' स्वामीजी ने उस कागज पर लिखा ''मैं पराजित।'' उस कागज को उसे देकर स्वामीजी ने कहा – ''आप अब प्रस्थान कीजिये।''

महाराज – एक गृहस्थ ये बात कह सकते हैं कि गृहस्थ जीवन साधु-जीवन से श्रेष्ठ है। किन्तु यदि किसी संन्यासी को ये बात कहने को कहा जाय, तब तो उसे पहले साधु-जीवन का त्याग करना होगा। तभी वह यह बात कह सकेगा।

– हमारे एक मित्र अद्वैत आश्रम में साधु के रूप में सेवा करने आये थे। उनके माता-पिताजी ने गम्भीरानन्दजी महाराज से भेंटकर लड़के को घर वापस जाने हेतु कहने के लिये निवेदन किया। महाराज ने उन लोगों को कहा – एक साधु होकर मैं आप लोगों के लड़के को घर वापस जाने की बात नहीं कह सकता। परन्तु यदि वह आप लोगों के साथ वापस जाय, तो हमलोग बुरा नहीं मानेंगे।''

महाराज – मैं जिस लड़के की बात कर रहा था, उसके साथ क्या हुआ?

– वह साधु भी नहीं बना और गृहस्थ भी नहीं बना। (सभी हँसते हैं।) उनलोगों ने सोचा था – उनके लड़कों को मैं भ्रमित रहा हूँ। इसलिये उन लोगों ने लड़के को यहाँ से ले जाकर एक साधु के संरक्षण में रखा, इस आशा से कि ये शायद दूसरे प्रकार के साधु होंगे। किन्तु उन साधु ने भी लड़के को साधु होने का परामर्श दिया। तब उसके पिताजी बड़े चिन्तित हुए थे कि इस लड़के का क्या करें। लड़के की साधु-संग में रुचि थी, इसलिए सभी साधु एक ही परामर्श देते थे, एक ही बात कहते थे। क्या किया जाय! इसके परिणामस्वरूप वह साधु या गृहस्थ दोनों न होकर एक विख्यात व्यक्ति के रूप में जीवन व्यतीत किया।

एक दूसरी घटना कहता हूँ सुनो। एक दिन मैं मठ-भवन की ओर जो रहा था। बीच में एक बेड़ा था। बेड़ा के दरवाजे को हटाकर जाना पड़ता था। मेरे पीछे थोड़ी दूर पर एक पागल आ रहा था। पागल जैसे एक गठरी लेकर घूमता है, वैसा ही था, वह दरवाजा हटाकर जा नहीं पा रहा है, कठिनाई हो रही है। गंगाधर महाराज (स्वामी अखण्डानन्द जी) ऊपर से देख रहे हैं। देखकर उन्होंने कहा – तुमने देखा नहीं, तुम्हारे पीछे एक व्यक्ति आ रहा है? उसे कठिनाई हो सकती है? मैंने कहा – हाँ महाराज, मुझसे अपराध हुआ है। क्योंकि वह पागल हो सकता है, किन्तु उसे कठिनाई होने पर तो हमें उसे देखना होगा।

– यह एक नई घटना है। हमलोगों ने पहले कभी नहीं सुनी। **(क्रमशः)**

भक्त ने भगवान को आँख अर्पण किया

श्रीधर कृष्ण, ईआरपी कंसल्टेंट, चेन्नई, तमिलनाडु

कन्नपा नायनार का जन्म वर्तमान कालहस्ती के निकट उडुप्पुर नामक स्थान पर हुआ था। उनके पिता का नाम नागन था। वे शिकार करनेवाली जनजाति के मुखिया थे। इनके आँगन में लंबे समय तक किसी बच्चे की किलकारियाँ नहीं गुँजी थीं। इसके लिए उन्होंने भगवान मुरुगन (कार्तिक) से प्रार्थना की। भगवान की कृपा से उनको एक पुत्र की प्राप्ति हुई। उन्होंने उसका नाम थिनन (मजबूत) रखा। समय के साथ-साथ वह बड़ा हुआ; किशोरावस्था फिर युवावस्था में पर्दापण किया। दिखने में वह हृष्ट-पुष्ट था तथा उसकी भुजायें योद्धा जैसी थीं। थिनन को उसके पिता और गाँव के बड़ों द्वारा शिक्षायें दी गयीं। थिनन जनजातीय समाज के शिकार करने की अनेक प्रकार की कलाओं एवं विद्याओं में निपुण हो गया। कालान्तर में वह एक कुशल धनुर्धर बन गया।

समय के साथ-साथ, कबीले के सरदार तथा थिनन के पिता नागन बूढ़े और कमजोर हो गए। एक दिन कबीले के लोग जंगली जानवरों के सामूहिक शिकार हेतु जाने के लिए सरदार नागन के पास एकत्र हुए। नागन ने बड़े-बुजुर्गों से कहा 'आप सभी जानते हैं कि मैं अब बूढ़ा हो गया हूँ। शिकार करने और आप सबका नेतृत्व करने में मैं अक्षम हूँ। इसलिए आज से आप सभी मेरे बेटे थिनन को अपने प्रमुख के रूप में स्वीकार कर लीजिए। मेरी ही तरह वह आप सबका नेतृत्व और सेवा पूरी तत्परता तथा निपुणता के साथ करेगा।'

थिनन को अपना नया सरदार पाकर सभी सुखी और प्रसन्न हुए। आवश्यक धार्मिक अनुष्ठान करने के बाद थिनन को कबीले का नया सरदार नियुक्त किया गया। अपने कर्तव्यों का अच्छी तरह से निर्वहण करता हुआ थिनन कबीले के सामूहिक शिकार अभियानों का सफलतापूर्वक नेतृत्व करने लगा। समय बीतता गया। एक दिन थिनन सामूहिक शिकार पर गया हुआ था। जब वह अपने मित्रों के साथ शिकार कर रहा था, तभी उसको एक जंगली सूअर दिखाई दिया। थिनन ने उसका पीछा करना शुरू किया। सूअर आगे-आगे और थिनन उसके पीछे-पीछे। पीछा करते-करते थिनन ने सूअर पर निशाना लगाकर बाण चलाया। बाण से घायल होकर सूअर मर गया। अपने अभियान में थिनन सफल हो गया। लेकिन बहुत समय से शिकार का पीछा करने के कारण थिनन को प्यास लग गयी। उसने आस-पास देखा, तो कुछ दूरी पर एक नदी की धारा बहती हुई दिखायी पड़ी। वह पानी पीने के लिए उसकी ओर चल पड़ा। पानी पीने के बाद वह निकट के पहाड़ पर चढ़ा। पहाड़ चढ़ने के बाद थिनन को भगवान शिव का एक मन्दिर दिखायी दिया। मन्दिर देखकर थिनन के भीतर भक्ति का स्त्रोत उमड़ने लगा; भावुक होकर वह दौड़कर गया और शिवलिंग को अपनी बाँहों में भर लिया। कुछ समय बीतने के बाद वह सहज अवस्था में आ गया। थिनन के मन में भगवान शिव की पूजा करने और भोग लगाने की इच्छा जागृत हुई। परन्तु यहाँ पर तो किसी प्रकार की कोई व्यवस्था ही नहीं है। वह सोचने लगा कि प्रभु की पूजा किस प्रकार से की जाये।

थिनन ने कुछ समय पूर्व ही सूअर का शिकार किया था। अत: उसके मन में सूअर के मांस से भगवान आशुतोष को भोग लगाने का भाव उत्पन्न हुआ। सूअर के मांस को पकाकर उसने चखकर देखा और फिर एक पत्ता में रख दिया। इसके साथ ही उसने शिवजी की पूजा करने के लिए कुछ फूल चुन लिए। यह सब करने के बाद वह इस दुविधा में था कि इन सभी सामग्रियों को कैसे ले जाये? फिर शिवजी को स्नान कराने के लिए जल भी ले जाना था।

इन्हीं सब चिन्ताओं के बीच में उसे एक युक्ति सूझी। थिनन ने अपने दोनों हाथों में मांस का पत्ता ले लिया; अपने बालों में फूलों को सजा लिया तथा अपने मुँह में पानी भरकर भगवान शिव की पूजा करने चल दिया।

मन्दिर के अन्दर जाकर उसने अपने मुँह में भरे हुए जल से शिवलिंग को स्नान कराया। स्नान कराकर उसने अपने बालों में रखे हुए फूलों से शिवलिंग को सजाया और फिर भोग के लिए सुअर के मांस को भगवान आशुतोष शिव के सामने रख दिया। भगवान को खाने में किसी तरह का विघ्न-बाधा न आये; इसलिए थिनन पूरी रात हाथ में धनुष लेकर पहरा देता रहा। सवेरा होने पर थिनन भगवान शिव को प्रणाम करके पुन: शिकार करने के लिए चला गया।

सवेरा होने पर मन्दिर के पुजारी पूजा करने के लिए मन्दिर में आये। वे मन्दिर में चारों ओर बिखरे हुए हड्डी और मांस को देखकर भौचक्का रह गये। उन्होंने देखा कि शिवलिंग के पास थूक भी पड़ा हुआ है। वे सोचने लगे कि भगवान के मन्दिर में ऐसा जघन्य अपराध कौन कर सकता है? लेकिन उनको वहाँ पर कोई दिखायी नहीं दिया। पुजारीजी ने मन्दिर की सफाई की और फिर नदी में स्नान करके आवश्यक सभी शुद्धि संस्कार किये। तत्पश्चात् उन्होंने वैदिक मन्त्रों का उच्चारण करते हुए भगवान को शुद्ध जल से स्नान कराया तथा विधि-विधान से शिवजी की पूजा-अर्चना की। भगवान को भोग इत्यादि देने के बाद प्रणाम करके वे वहाँ से वापस अपने घर आ गये।

इधर दूसरी ओर शिकारी थिनन कई सूअर, हिरण इत्यादि का शिकार करके ले आया। उसने ताज़े मांस को शहद के साथ मिलाया, फिर उसको भुना और चखने के बाद एक पत्ता में रख दिया। भावविभोर थिनन पूर्ववत् ही हाथ में मांस लिए, अपने बालों में फूल को संजोकर तथा मुँह में जल लेकर पूजा करने के लिए चल दिया। उसने अपने मुँह के जल से भगवान शिव को स्नान कराया, अपने बालों में रखे फूलों से शिवलिंग की पूजा की और मांस को भगवान के भोग के लिए रख दिया।

इस प्रकार कई दिनों तक थिनन की और पूजारीजी की पूजा चलती रही। प्रत्येक दिन पुजारीजी मन्दिर को साफ करके पूजा करते और प्रत्येक दिन थिनन अपने अनुसार मांस इत्यादि से भगवान की पूजा करता। प्रत्येक दिन हड्डी-मांस से मन्दिर को दूषित होते देखकर पुजारीजी बहुत दुखी हुए।

अन्तत: पुजारीजी ने प्रभु से प्रार्थना की, 'भगवन्! आप इस दैनिक अपराध को कैसे सहन कर रहे हैं? आपके मन्दिर को वह प्रतिदिन अपवित्र कर जाता है। उस नराधम को आप कोई सजा क्यों नहीं दे रहे हैं?' उसी रात भगवान शिव पुजारीजी के सपने में आकर बोले, ''तुम, मेरे उस भक्त को एक निकृष्ट व्यक्ति मत समझो। मेरे बारे में उसके सारे विचार एवं कार्य अपनत्वपूर्ण हैं; तथा उसकी सारी कियाएँ मुझे अत्यन्त प्रिय लगती हैं। जिस जल को, वह अपने मुँह में लाकर मुझ पर चढ़ाया है, वह गंगा की तुलना में अधिक पवित्र है। जिन पुष्पों को वह अपने बालों में सँजोकर लाता है, वे पुष्प मेरे लिए ब्रह्मा और विष्णु द्वारा अर्पित किए गए पुष्पों से भी अधिक बहुमूल्य हैं। जो मांस वह पहले स्वयं चखकर, बाद में मुझे अर्पित करता है, वे मेरे लिए यज्ञ में दी गयी आहुति से कहीं अधिक प्रिय हैं। जो शब्द वह प्रेम से बोलता है, वह मन्त्रों की तुलना में किसी भी प्रकार से कम नहीं है। मैं तुमको दिखाऊँगा कि वह मेरा कितना बड़ा भक्त है। तुम कल वहाँ जाकर छिपकर उसकी भक्ति की पराकाष्ठा देखना।'' पुजारीजी जग गये, उनकी आँखों में नींद नहीं थी। वे अब केवल सुबह होने की प्रतीक्षा कर रहे थे। सुबह पुजारीजी जल्दी-जल्दी स्नान करके तैयार हुए और मन्दिर की ओर चल पड़े। वहाँ जाकर वे एक जगह छिप गये। थिनन अपने नियमानुसार हाथ में मांस, बालों में फूल तथा मुँह में पानी लेकर भगवान आशुतोष की पूजा करने के लिए आ गया। लेकिन थिनन को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि भगवान शिवशंकर की दाहिनी आँख से रक्त निकल रहा है। यह देखकर वह बहुत घबरा गया और अपने प्रभु की ओर दौड़ा। उसने शिवजी की आँख से बहते हुये रक्त को पोंछ दिया, लेकिन रक्त बहता ही जा रहा था। वह चिन्तातुर होकर सोचने लगा, क्या करें? सरल थिनन के मन में शिवजी को अपनी आँख देने का विचार आया। उसने तुरन्त अपनी दाहिनी आँख को निकालकर शिवलिंग की दाहिनी आँख पर लगा दिया। आश्चर्य यह कि थिनन के आँख लगाते ही शिवजी का रक्त बहना बन्द हो गया। यह देखकर तो थिनन बहुत आनन्दित हुआ और पागल की भाँति नाचने लगा।

कुछ देर बाद उसने देखा की शिवजी की बायीं आँख से भी रक्त निकल रहा है। यह देखकर थिनन फिर से घबरा गया। थिनन अपनी दाहिनी आँख की तरह ही शिवलिंग पर अपनी बायीं आँख लगाने के लिए तैयार हो गया। उसी समय उसके मन में विचार आया कि मैंने तो पहले ही अपनी एक आँख शिवलिंग पर लगा दी है। दूसरी आँख निकालने के बाद शिवजी की आँख कहाँ पर है, यह मुझे दिखायी नहीं देगा; तो मैं शिवजी की बायीं आँख के स्थान पर अपनी आँख कैसे लगा पाऊँगा? थिनन चिन्तित हो गया। वह सोचने लगा कि इस परिस्थिति में क्या किया जाय? इधर शिवजी की आँख से निरन्तर रक्त निकल रहा था।

हठात् उसके मन में एक विचार आया। उसने अपना बायाँ पैर शिवाजी की बायीं आँख पर रख दिया और अपने तीर से अपनी बायीं आँख भी निकालने लगा।

उसी समय भगवान आशुतोष प्रकट हो गये। उन्होंने थिनन का हाथ पकड़ लिया और कहा – ''रुको! कन्नपा, रुको!'' शिवजी ने कहा ''थिनन, तुमने अपनी आँखें मुझे अर्पित की हैं, इसलिए आज से तुम 'कन्नपा' के नाम से प्रसिद्ध होओगे।'' भगवान शिव की कृपा से थिनन की आँखें पूर्ववत् अच्छी हो गयीं। शिवजी का दर्शन कर वह धन्य हो गया। शिवशंकर ने कन्नपा को आशीर्वाद दिया और उसे मुक्ति प्रदान की। सभी देवतागण फूलों की वर्षा करने लगे।

पुजारीजी छिपकर यह सब देख रहे थे। थिनन की भगवान शिव के प्रति अनन्य भक्ति को देखकर वे भावविह्वल हो गये। थिनन के कारण ही पुजारीजी को भी भगवान शिव के दर्शन हुए। कन्नपा नयनार दक्षिण भारत के ६३ शैव सन्तों (नायनारों) में से एक माने जाते हैं। ○○○

मृत्युञ्जयाष्टकम्

डॉ. सत्येन्दु शर्मा

प्रा. दूधाधारी संस्कृत महाविद्यालय और महिला महाविद्यालय, रायपुर

ग्रीवायां गरलं यस्य नीलवर्णं हरेरिव।
मृत्युञ्जय ! प्रभो ! मे त्वं मृत्योर्भयं विनाशय।।१।।
गगनात् पतिता गङ्गाऽभंगा जटासु रक्षिता।
मृत्युञ्जय ! प्रभो ! मे त्वं मृत्योर्भयं विनाशय।।२।।
अर्पिते लोचने विष्णौ दत्तं चक्रं सुदर्शनम्।
मृत्युञ्जय ! प्रभो ! मे त्वं मृत्योर्भयं विनाशय।।३।।
मन्त्रं जप्त्वाऽभवत् शुक्रो मृतसंजीवनीगुरुः।
मृत्युञ्जय ! प्रभो ! मे त्वं मृत्योर्भयं विनाशय।।४।।
संस्तूयाभूद् गणाध्यक्षः पामरोऽप्यन्धकासुरः।
मृत्युञ्जय ! प्रभो ! मे त्वं मृत्योर्भयं विनाशय।।५।।
दग्धकामो प्रसादात्ते सोऽनङ्गोऽद्यापि जीवति।
मृत्युञ्जय ! प्रभो ! मे त्वं मृत्योर्भयं विनाशय।।६।।
त्वां सम्पूज्य जितो मृत्युर्मार्कण्डेयमहर्षिणा।
मृत्युञ्जय ! प्रभो ! मे त्वं मृत्योर्भयं विनाशय।।७।।
मृत्युस्ते किंकरो घोरो रोगादयश्च शासने।
मृत्युञ्जय ! प्रभो ! मे त्वं मृत्योर्भयं विनाशय।।८।।

– जिसके कण्ठ में विष्णु के समान नील रंग का विष है, आकाश से गिरी हुई गंगा जिनके द्वारा जटाओं में अविकल रूप से सुरक्षित कर ली गई, भगवान विष्णु द्वारा पूजन के लिये अपनी आँखें समर्पित करने पर उन्हें जिसने सुदर्शन चक्र प्रदान किया, ऐसे हे प्रभु मृत्युंजय भगवान ! तुम मेरा मृत्यु का भय समाप्त कर दो।

आपका मन्त्र जपकर जो शुक्राचार्य मृतसंजीवनी विद्या के गुरु बन गये, आपकी स्तुति करके जो पापी अन्धकासुर भी गणाध्यक्ष बन गया, तीसरे नेत्र से जला दिया गया कामदेव जो आज भी आपकी कृपा से देहरहित रूप में जी रहा है, ऐसे हे प्रभु मृत्युंजय भगवान ! तुम मेरा मृत्यु का भय समाप्त कर दो।

मार्कण्डेय महर्षि ने आपकी पूजाकर मृत्यु को जीत लिया था, भयानक मृत्यु आपका सेवक है और रोग आदि भी आपके शासनाधीन हैं, ऐसे हे प्रभु मृत्युंजय भगवान ! तुम मेरा मृत्यु का भय समाप्त कर दो।

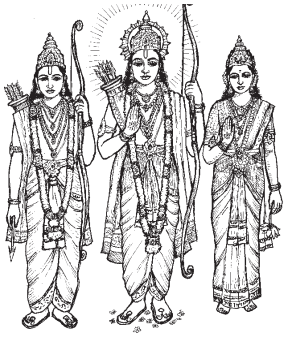

रामराज्य का स्वरूप (३/३)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार थे। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज थे। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में १९८९ में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलेखन स्वर्गीय श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने किया है। – सं.)

वेदों ने कहा कि स्मृति ही परम प्रमाण है, इसलिए उन्हीं की बनाई हुई लीक पर व्यक्ति को चलना चाहिए। इन्हीं शब्दों में मनु की प्रशंसा करते हुए कहा गया –

तेहिं मनु राज कीन्ह बहु काला।

उन महाराज मनु ने बहुत काल तक राज्य किया।

प्रभु आयसु सब बिधि प्रतिपाला।। १/१४१/८

प्रभु आयसु का अभिप्राय वही संविधान से है। उन्होंने जिसे ईश्वरीय संविधान माना, कर्म-सिद्धान्त के आधार पर जिस संविधान को माना उसी के अनुकूल स्वयं उन्होंने अपने जीवन को व्यतीत किया और अपनी प्रजा को भी उसी मार्ग पर चलाने की चेष्टा की। यह है मनु के जीवन का उज्ज्वलतम पक्ष, महानतम पक्ष। पर धर्म की स्थिति में पहुँचने के बाद भी धर्म का जो परिणाम होना चाहिए, वह परिणाम मनु के जीवन में नहीं था। क्योंकि रामायण में एक क्रम बताया गया है कि धर्म कैसे आता है, धर्म का फल क्या है। उत्तरकाण्ड के संवाद में वर्णन मिलता है, जिसमें पार्वतीजी क्रम बताती हैं, कितने लोगों में कौन व्यक्ति किस प्रकार के पाये जाते हैं। उसमें कहा गया –

नर सहस्र महँ सुनहु पुरारी।
कोउ एक होइ धर्म ब्रतधारी।।
धर्मसील कोटिक महँ कोई।
बिषय बिमुख बिराग रत होई।। ७/५३/१

हजारों व्यक्तियों में से कोई एक बिरला व्यक्ति ही धर्म का पालन करता है। पर धर्म अन्तिम वस्तु नहीं है। धर्म का क्या फल होना चाहिए? उसके बाद अंकों की पार्वतीजी ने मानो बड़ी संख्या की छलांग लगा दी, हजार से प्रारम्भ किया था, तो लगता था कि अब बतायेंगी कि हजारों धर्मात्मा में कितने धर्म का फल पाते हैं, पर उन्होंने हजार से सीधे करोड़ कर दिया और कहा –

नर सहस्र महँ सुनहु पुरारी।
कोउ एक होइ धर्म ब्रतधारी।।
धर्मसील कोटिक महँ कोई।
बिषय बिमुख बिराग रत होई।।

हजारों में से एक कोई धर्मात्मा होता है और करोड़ों धर्मात्मा में कोई एक वैराग्यवान होता है। उन वैराग्यवानों में भी फिर वह संख्या कोटि-कोटि में ही गिनाई गई। हजारों व्यक्तियों में कोई एक धर्मात्मा, करोड़ों में कोई एक वैराग्यवान और

कोटि बिरक्त मध्य श्रुति कहई।
सम्यक ग्यान सकृत कोउ लहई।। ७/५३/३

इस प्रकार के करोड़ों वैराग्यवानों में से कोई एक व्यक्ति ऐसा होता है, जो ज्ञान प्राप्त करता है। ज्ञान की दुर्लभता की ओर इसमें संकेत किया गया है। उसका अर्थ है कि धर्म के मार्ग की दो दिशाएँ हैं – एक छोटा मार्ग है और दूसरा धर्म का मार्ग लम्बा है, बड़ा कठिन है। एक धर्म का उद्देश्य है अधिक-से-अधिक भोग और सुख को पाना। धर्मशास्त्र आश्वासन देता है कि अगर कोई व्यक्ति धर्म का ठीक-ठीक आचरण करेगा, धर्म का ठीक-ठीक पालन करेगा, तो उसका परिणाम होगा – इस जीवन में भी सुख मिलेगा, कीर्ति मिलेगी, लोग प्रशंसा करेंगे। धन भी उसको प्राप्त होगा। शास्त्रों ने उसे आश्वासन दिया कि उसको मरने के बाद स्वर्ग में भी दिव्य भोग भोगने को मिलेंगे। जब भगवान राम ने लक्ष्मण को धर्म का उपदेश दिया, तो बताया कि धर्मशास्त्र की दृष्टि से तुम्हें क्या करना चाहिए? लक्ष्मणजी को बड़ी निराशा हुई। लक्ष्मणजी ने प्रभु से यही कहा कि प्रभु, धर्म के जिस उपदेश को आपने दिया है, उसका तीन ही फल

मुझे ज्ञात है। अगर किसी को वे तीनों फल नहीं चाहिए, तो वह उपदेश उसके लिए सार्थक है कि नहीं? –

धरम नीति उपदेसिअ ताही।
कीरति भूति सुगति प्रिय जाही।। २/७१/७

कीर्ति, सद्गति और ऐश्वर्य ही धर्म का उद्देश्य है। संसार में लोग अगर धर्म का पालन करते हैं, तो इन्हीं में से किसी एक या दो या तीनों को पाने के लिये करते हैं। पर इसमें भटकाव की बड़ी सम्भावना है। क्या? अगर यह मान लिया गया कि कीर्ति धर्म से मिलती है या ऐश्वर्य धर्म से मिलता है, स्वर्ग धर्म से मिलता है, तो एक ही डर है कि व्यक्ति को लगेगा कि धर्म का यही फल है ! ये तो जीवन में अधर्म के द्वारा भी मिल सकते हैं – कीर्ति चालाकी से भी मिल सकती है, धर्म बेईमानी से भी पाया जा सकता है। ऐसे भी तो दृष्टान्त हैं कि जहाँ पर धर्म के न पालन करनेवालों की भी बड़ी कीर्ति हो जाती है।

वह व्यंग्यात्मक प्रसंग आता है न ! समुद्र-मन्थन में राहु का दृष्टान्त क्या था? राहु अमर हो गया। कीर्ति पाकर लोग अमर ही तो होना चाहते हैं। ऐसी स्थिति में, राहु की अमरता का अभिप्राय क्या है? देवता अमर हुए, देवता अमर हैं, यह तो भले लोगों की अमरता है। पर कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो राहु के समान भी समाज में अमर हो जाते हैं, पूज्य बन जाते हैं। पर भले ही वे अमर बन जायें, भले ही पूज्य बन जाएँ, पर उनको पाप-ग्रह मान कर ही शास्त्र उनका वर्णन करेगा। जब उन नवग्रहों की पूजा होती है, तो डर के कारण राहु-केतु की भी पूजा जरूर कर दी जाती है, पर जब भी ज्योतिष-शास्त्र में राहु-केतु का वर्णन किया जायेगा, तो कहेंगे, ये खल ग्रह हैं, पाप ग्रह हैं। उसका अभिप्राय है कि दुष्ट व्यक्ति यदि चालाकी से, खल व्यक्ति अगर चलाकी से सफलता पा भी ले, तो वह खल की श्रेणी में ही गिना जाता है। उसने सोचा कि बिना देवताओं के रूप बनाए अमृत नहीं मिलेगा। कुछ लोग बड़े कलाकार होते हैं, वेष बदलने की कला में बड़े निपुण होते हैं। वे होते तो हैं भीतर से दैत्य वृत्तिवाले, पर देवता के रूप में वेष बनाने में बड़े निपुण होते हैं। बुद्धि का पैनापन और बुद्धि के पैनेपन के साथ-साथ वेष बदलने की कला में निपुणता और उसके बाद, ठीक चुनाव करना। राहु सोचने लगा कि कहाँ बैठें? प्रारम्भ में बैठने में तो उसको डर लगा। क्योंकि पंक्ति में सबसे पहले जो व्यक्ति बैठा है, उसकी ओर उसका विशेष ध्यान जाता है। अगर मुझे पहचान लिया गया, तो मैं अमृत से वंचित हो जाऊँगा। इसलिए पहले नहीं बैठना चाहिए। तब? यदि अन्त में बैठ जाऊँ और परोसनेवाला थक जाय और बाँटना कहीं बंद कर दे, तो? उसमें चौकन्नापन बहुत है कि बाँटते-बाँटते अमृत बीच में ही समाप्त हो गया, अन्त में बचा ही नहीं, तो मैं अमृत से वंचित हो जाऊँगा। इसलिए चुनाव क्या किया? चुनाव किया बीच में बैठने का और बैठा भी कहाँ? सूर्य और चन्द्रमा के बीच में। पुराणों की भाषा बड़ी कठिन है। उसका अभिप्राय यह है कि उसने सोचा कि अँधेरे के छुपने की सबसे बढ़िया जगह कौन है? तो उसने सोचा कि अँधेरे को छुपने के लिये सबसे बढ़िया जगह प्रकाश होता है। हाँ, प्रकाश से प्रकाश तो होता है, पर प्रकाश की आड़ में कहीं न कहीं अंधेरा छिपा हुआ होता है। इसीलिए उसे क्या लगा कि जो अमृत बाँटने आयेगा, वह सूर्य और चन्द्रमा के जगमाहट में मेरी ओर ध्यान ही नहीं देगा और इसी बीच एक-दो बूँद अमृत मेरे पात्र में भी गिर ही जायेगा। वही हुआ भी। अमृत का बूँद जैसे ही गिरा, तुरन्त पी गया। बिलकुल देर नहीं किया। तुरन्त पी लिया। अचानक सूर्य और चन्द्रमा का ध्यान उधर गया कि यह बीच में कौन आ गया? यह तो राहु है, दैत्य है और देवता का वेष बना लिया है। तुरन्त संकेत किया, तो भगवान विष्णु ने चक्र से उसका सिर काट लिया। विचित्र विरोधाभास है! मोहिनी के रूप में अमृत दे दिया और विष्णु के रूप में चक्र से सिर काट दिया। पर सिर काट देने के बाद भी वह मरा नहीं। बल्कि दो टुकड़ों में जीवित रहा। उसका सिर वाला भाग का नाम हो गया राहु और धड़ वाले भाग का नाम हो गया केतु। भगवान से पूछा गया कि पहले आपने अमृत दे दिया, फिर बाद में चक्र से सिर

काट दिया। आपने तो यह विचित्र कार्य किया ! पहले तो यह एक ही था, पर अब दो-दो बन गया। यह तो विचित्र बात है। भगवान ने हँसकर कहा कि इसका अर्थ है। क्या? बोले, अमृत तो मैंने इसलिए दे दिया कि मैंने सोचा, जिसने मुझे पहचान लिया, वह तो अमृत का अधिकारी हो ही गया। उसको अमृत तो मिलना ही चाहिए। ज्ञान का भी, बुद्धिमत्ता का भी तो संसार में एक सम्मान होता ही है। दृष्टि अगर व्यक्ति की पैनी है, तो उसके बुरे होने पर भी उसकी दृष्टि के पैनेपन को तो हम अस्वीकार नहीं करेंगे। पर भगवान ने कहा कि ऐसे व्यक्ति दो रूपों में संसार में जीवित रहते हैं। किन रूपों में? यह राहु जो है, उसका रंग है काला और केतु का रंग है उजला। दोनों की प्रकृति क्या है? राहु के द्वारा तो सूर्य-चन्द्र पर ग्रहण लगता है और ज्योतिषशास्त्र की मान्यता है कि जो पुच्छ-तारा है वही केतु है। बहुत बढ़िया बात है। क्या? बोले राहु के समान अँधेरा फैलाना। ऐसे व्यक्ति जब अमर हो जाते हैं, तो अमर होकर स्वयं चमक न पावें, तो अँधेरा फैलाते हैं और यदि पूरी तरह अंधेरा न भी फैला सके, तो कुछ घंटों के लिये सही, दूसरों के प्रकाश को रोक देने में वे सक्षम हैं। यही राहु का सूर्य और चन्द्रमा पर ग्रहण है।

केतु के रूप में ऐसे लोग जब चमकें, तो और खतरनाक। क्योंकि हम लोगों की मान्यता है कि पुच्छल तारा का उदय होता है तो कोई अनिष्ट होता है। इसका अभिप्राय है कि धूमकेतू की तरह समाज में चमकनेवाले कोई व्यक्ति हों, तो प्रसन्न नहीं होना चाहिए कि ये तो इतने उँचे चमक रहे हैं। समाज के लिये इससे बड़ा भय और आतंक की कोई बात नहीं हो सकती। उसके साथ-साथ भगवान ने यह भी सत्य बताया कि ऐसे व्यक्ति जो हैं, वे दो टुकड़ों में बँटे हुए हैं, सिर अलग और धड़ अलग।

इसका अभिप्राय है कि जो मस्तिष्क से समझते कुछ और हैं, वाणी से कहते कुछ हैं और क्रिया से आचरण दूसरा कुछ करते हैं, वे ही राहु और केतु के समान हैं, जिनके विचार और आचरण में परस्पर विरोधाभास है, वे ही इस द्वंद्वात्मक स्थिति के परिचायक हैं।

मानो इस सम्भावना को स्वीकार किया गया है कि अधर्म करनेवाला व्यक्ति कीर्ति न प्राप्त कर लेता हो, अधर्म करनेवाला व्यक्ति धन न प्राप्त कर लेता हो। तो धर्म का फल अगर कीर्ति मानें, धन मानें और स्वर्ग में अप्सराओं के साथ विहार माने, तो मनुष्य के अधार्मिक बनने में देर नहीं लगेगी। अगर उसे दिखाई देगा कि धर्म के मार्ग से कम लाभ दिखाई दे रहा है, धर्म के मार्ग से कम कीर्ति हो रही है, धर्म के मार्ग से मरने के बाद भोग मिलेगा। तो क्यों न हम अधर्म के मार्ग से इसे प्राप्त कर लें। छोटे मार्ग की खोज में रहनेवाला व्यक्ति धर्म के मार्ग से अधर्म के मार्ग में भटक जाता है। इसलिए धर्म का फल भोग मानना यह अपरिपक्वता तो है ही, वस्तुत: यह बड़ा भयावह सिद्धान्त है। **(क्रमशः)**

पुरखों की थाती

गुरोरपि न भोक्तव्यमन्नं संस्कारवर्जितम्।
दुष्कृतं हि मनुष्यस्य सर्वमन्ने व्यवस्थितम्।।७३१।।

– गुरु का अन्न भी यदि (यज्ञ या ईश्वरार्पण के द्वारा) शुद्ध किया हुआ न हो, तो उसे ग्रहण नहीं करना चाहिये, क्योंकि मनुष्य के सारे दुष्कर्म उसके अन्न में स्थित रहते हैं।

सर्वेषां मंगलं भूयात् सर्वे सन्तु निरामया:।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दु:खभाग भवेत्।।७३२।।

– सभी लोगों का कल्याण हो, सभी लोग स्वस्थ रहें, सभी लोग अच्छाई को ही देखें, किसी को भी दु:ख न भोगना पड़े। (गरुड़ पुराण)

दुर्जन: सज्जनो भूयात् सज्जन: शान्तिमाप्नुयात्।
शान्तो मुच्यतेबन्धेभ्य: मुक्तस्त्वन्यान्विमोचयेत्।।७३३।।

– दुष्ट लोग सज्जन बन जायँ, सज्जन लोग शान्ति प्राप्त करें, शान्त लोग संसार-बन्धनों से मुक्त हो जायँ और जीवन्मुक्त लोग दूसरों की मुक्ति में सहायक हों।

'मुझे ऐसा ही जीना है', 'मुझे ऐसा ही मरना है'

स्वामी गुणदानन्द, रामकृष्ण मठ, नागपुर

सुभाषचन्द्र बोस का जन्म २३ जनवरी, १८९७ को कटक में हुआ था। उनके पिता का नाम जानकीनाथ बोस और माता श्रीमती प्रभावती देवी थी। सुभाष बचपन से ही निडर, स्वाभिमानी थे।

वे पाँच वर्ष के थे जब उन्हें प्रोटेस्टेन्ट यूरोपियन विद्यालय में प्रवेश दिलाया गया। उस विद्यालय में अँग्रेज विद्यार्थी भी पढ़ते थे। वे भारतीय लड़कों के साथ मारपीट तथा गाली-गलौज करते थे। एक दिन मध्यांतर में, अँग्रेज विद्यार्थी मैदान में खेल रहे थे। सभी भारतीय विद्यार्थी पेड़ के नीचे बैठे थे। सुभाष ने उनसे पूछा, 'क्या तुम लोगों को खेलने का मन नहीं करता?' उत्तर मिला, 'खेलने का मन तो बहुत करता है, परन्तु अँग्रेज लड़के हमें मैदान में नहीं आने देते।' यह सुनकर सुभाष ने कहा, 'क्या, भगवान ने तुम लोगों को हाथ नहीं दिये हैं? क्या तुम गोबर-मिट्टी के बने हो? निकालो गेंद।' पहले तो लड़के थोड़े-से झिझक गए, परन्तु सुभाष ने जब

सुभाषचन्द्र बोस

गेंद उछाली तब सब लड़कों ने खेलना शुरू किया। अँग्रेज लड़कों को यह सहन नहीं हुआ और दोनों गुटों में लड़ाई हुई। प्रधानाध्यापक तथा शिक्षकों ने उन्हें समझाया, थोड़ा डाँटा। लेकिन अँग्रेज लड़कों ने चार दिन बाद भारतीयों पर हमला कर दिया। सुभाष ने लड़कों के साथ मिलकर उनकी खूब धुनाई की। प्रधानाध्यापक ने जानकीनाथ बोस को पत्र लिखा – आपका बेटा पढ़ाई में बहुत अच्छा है, परन्तु वह गुटबाजी करके लड़ाई करता है, उसे समझा दीजिए। जानकीनाथ ने सुभाष से इस घटना के बारे में पूछा। सब कुछ सुनने के बाद सुभाष ने कहा, 'आप भी प्रधानाध्यापक को कहें कि वे अँग्रेज लड़कों को समझाये यदि वे गाली-गलौज करेंगे और मारेंगे तो हम भी मुँहतोड़ जवाब देंगे।'

सन् १९०७ में सुभाषचन्द्र अपने मामा के साथ कोलकाता गये। जब वह कोलकाता से लौटे उनका ध्यान क्रान्तिकारियों के जीवन की ओर आकर्षित हुआ। एक बार रिश्तेदार पुलिस अधिकारी, उनके घर आये। उन्होंने क्रान्तिकारियों के चित्रसंग्रह की पुस्तिका देखी और उसे जानकीनाथ को दिखाते हुए कहा, तुम्हारे घर में ये क्या चल रहा है? इसे घर में मत रखिए।' यह वह पुस्तिका थी जिसमें सुभाष ने नाना साहब पेशवा, तात्या टोपे, रानी लक्ष्मीबाई, वासुदेव बलवंत फड़के, चाफेकर बंधु, प्रफुल्लचन्द्र चाकी, खुदीराम बोस जैसे क्रान्तिकारियों के चित्र संग्रहित करके चिपकाये थे। क्रान्तिकारियों के चित्रसंग्रह की पुस्तिका में सुभाष ने ऊपर लिखा था – **'मुझे ऐसा ही जीना है', 'मुझे ऐसा ही मरना है।'** उस पुस्तिका को जला दिया गया। जब सुभाष को घर आकर पता चला, वह फूटफूटकर रोने लगे। दो दिन तक उसने कुछ नहीं खाया।

सुभाष एक बहुत बुद्धिमान एवं निश्चयी विद्यार्थी थे। वह रेव्हनशाह कॉलेजिएट विद्यालय, कटक में पढ़ते थे। उस

शेष भाग पृष्ठ ३७८ पर

वरिष्ठ साधुओं की स्मृतियाँ (१)

स्वामी ब्रह्मेशानन्द

रामकृष्ण अद्वैत आश्रम, वाराणसी

(स्वामी ब्रह्मेशानन्द जी रामकृष्ण संघ के वरिष्ठ संन्यासी हैं। वे लुसाका और चण्डीगढ़ के अध्यक्ष और वेदान्त केसरी के सम्पादक थे। वे कई वरिष्ठ संन्यासियों के सान्निध्य में आये और उनकी मधुर स्मृतियों को लिपिबद्ध किया है। इसका हिन्दी अनुवाद श्री रामकुमार गौड़, वाराणसी ने किया है। – सं.)

स्वामी यतीश्वरानन्द जी महाराज

सम्भवत: सन् १९६० ई० में इन्दौर की एक महिला भक्त श्रीमती आर.पी. सेठ ने नागपुर में श्रद्धेय स्वामी यतीश्वरानन्द जी से मंत्र-दीक्षा प्राप्त की। उनके ही घर में मैंने सर्वप्रथम स्वामी यतीश्वरानन्द जी का चित्र देखा। यह चित्र सिर पर टोपी लगाए तथा घुटनों पर हाथों को रखकर बैठे हुए स्वामी यतीश्वरानन्द जी का बहुत लोकप्रिय तथा प्रचलित चित्र नहीं था। इस चित्र में वे अपनी गोद में दोनों हाथों की उंगलियों को परस्पर संलग्न करके बैठे हैं तथा सिर पर टोपी भी नहीं है। मैं उनके मुखमंडल के सौन्दर्य और सौम्यता से मंत्रमुग्ध हो गया। तब मैं मंत्रदीक्षा के बारे में कुछ भी नहीं जानता था।

सम्भवत: सन् १९६१ ई० में महेश (बाद में स्वामी प्रत्यगानन्द) ने नागपुर जाकर श्रद्धेय महाराज जी से मंत्र-दीक्षा ली। मैं भी जाने वाला था, किन्तु मानसिक ऊहापोह के कारण नहीं गया। महेश बड़े उत्साह से लौटे और उन्होंने अपनी पूरी यात्रा को इतने उत्साहवर्धक ढंग से बताया कि मैं बैठा नहीं रह सका और तुरन्त नागपुर चला गया, किन्तु वहाँ पता चला कि स्वामी यतीश्वरानन्द जी नागपुर से प्रस्थान कर चुके हैं और मैं निराश हो गया।

सम्भवत: इसके एक वर्ष पूर्व मैं बेंगलुरु गया था। मेरे पिताजी तब वहीं थे और मैं ग्रीष्म ऋतु में एक माह वहीं रहा था। मैं बेंगलुरु मठ में स्वामी यतीश्वरानन्द जी से मिलने भी गया था। स्वामी सत्स्वरूपानन्द जी ने मुझे उनसे मिलने की सलाह दी थी। किन्तु तब स्वामी यतीश्वरानन्द जी कहीं अन्यत्र गए थे और मैं उनसे नहीं मिल सका था। सोमनाथ महाराज (स्वामी संज्ञानन्द जी) उस दिन पूजा कर रहे थे और उन्होंने मुझे उस दिन देखा भी था। बाद में यद्यपि स्वामी यतीश्वरानन्द जी नागपुर से जा चुके थे, स्वामी संज्ञानन्द जी उस समय वहीं थे और उन्होंने मुझे पहचान लिया था।

मंत्र–दीक्षा (अति महत्त्वपूर्ण)

१९६२ ई० में मैं मंत्र-दीक्षा के लिए नागपुर गया। श्रद्धेय स्वामी यतीश्वरानन्द जी दीक्षा के पूर्व प्रत्येक दीक्षार्थी का व्यक्तिगत साक्षात्कार लिया करते थे। (हमलोग इस साक्षात्कार के बारे में भयभीत रहते थे और मौखिक परीक्षा की तरह इसकी तैयारी किया करते थे !) साक्षात्कार के समय उन्होंने मुझसे पूछा कि मैं श्रीरामकृष्ण को स्वीकार करता हूँ या नहीं? मैंने 'हाँ' में उत्तर दिया। किन्तु तथ्य यह था कि स्वामी विवेकानन्द के प्रति मेरी बड़ी श्रद्धा थी और श्रीरामकृष्ण के प्रति अत्यल्प श्रद्धाभाव था। मैं विवेकानन्द साहित्य का खूब अध्ययन किया करता था, किन्तु श्रीरामकृष्ण-वचनामृत के प्रति मुझे कभी कोई रुचि या प्रेरणा नहीं हुई और मैंने वचनामृत पढ़ा भी नहीं था। (स्वामी सत्स्वरूपानन्द जी, यह बात जानते थे तथा उन्होंने मुझसे इसके कम-से-कम कुछ अंशों को पढ़ लेने को कहा था, जिससे मंत्र-दीक्षा के समय पूछे जाने पर मैं यह कह सकता – ''हाँ, मैंने इसका कुछ अंश पढ़ा है।'' उन्होंने मुझे यहाँ तक सुझाव दिया था कि मैं वचनामृत के कम-से-कम उन अंशों को अवश्य पढ़ लूँ, जहाँ नरेन्द्र (स्वामी विवेकानन्द) का प्रसंग है।)

उस दिन साक्षात्कार के बाद मैंने सोचा कि यह कहना सत्य नहीं है कि मैं श्रीरामकृष्ण को स्वीकार करता हूँ। अत: संध्या–आरती के पश्चात्, स्वामी यतीश्वरानन्द जी की भक्तों से भेंट के समय, मैं उनसे मिलने गया। उस समय मैंने उनके

समक्ष यह स्वीकार किया कि मैं स्वामी विवेकानन्द को तो मानता हूँ, श्रीरामकृष्ण को नहीं। इस पर स्वामी यतीश्वरानन्द जी ने तुरन्त कहा, ''तो, दीक्षा मत लो।'' उन्होंने फिर कहा, ''मैं तुम्हारा गुरु रहूँगा और मार्गदर्शन करता रहूँगा।'' मैंने पूरे एक वर्ष तक दीक्षा की प्रतीक्षा की थी और इसके द्वार पर पहुँचकर मैं अस्वीकृत हो रहा था। मैं बिलकुल हताश होकर स्वामी यतीश्वरानन्द जी के सामने फूट-फूटकर रोने लगा। वे शान्त और चुप ही रहे। एक अन्य स्वामीजी मुझे कमरे से बाहर ले गए।

अगले दिन प्रात: जब मैं मठ आया, तो मेरे साथ आए हुए श्री रवि, डॉ० खेर और उनकी पत्नी दीक्षा के लिए बैठी हुई थीं। मैं निराश और नाराज था। मैं साधु-निवास में पीछे एक कुर्सी पर बैठा था, तभी नागपुर मठ के तत्कालीन अध्यक्ष और एक महान संत स्वामी भास्करेश्वरानन्द जी ने मेरे पास आकर, मेरे पास की कुर्सी पर बैठकर मुझसे कहा, ''तुम श्रीरामकृष्ण को क्यों नहीं स्वीकार करते? तुम स्वामी विवेकानन्द को स्वीकार करते हो। उन्होंने श्रीरामकृष्ण के बारे में क्या कहा है? अर्थात् श्रीरामकृष्ण अपनी चरणधूलि से सैकड़ों विवेकानन्द उत्पन्न कर सकते हैं। तब भी तुम श्रीरामकृष्ण को स्वीकार नहीं करते? फिर चौंकानेवाली उन्होंने एक बात कही, ''श्रीरामकृष्ण ईश्वर नहीं हैं। वे ईश्वर के भी पिता हैं।''

सौभाग्यवश, स्वामी सत्स्वरूपानन्द जी उसी दिन हैदराबाद से नागपुर आए। वे इन्दौर से हैदराबाद चले गए थे। उन्होंने मेरी सारी समस्या से अवगत होकर मुझसे बातचीत करते हुए कहा कि दीक्षा के समय स्वामी यतीश्वरानन्द जी श्रीरामकृष्ण के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं। फिर श्रीरामकृष्ण ही दीक्षा देते हैं। इस प्रकार स्वामी यतीश्वरानन्द जी बिलकुल ठीक-ठीक और सुस्पष्ट रूप से अनुभव करते हैं कि वे दीक्षा नहीं दे रहे हैं, अपितु श्रीरामकृष्ण दीक्षा दे रहे हैं। अत: यदि मैं श्रीरामकृष्ण को गुरु के रूप में स्वीकार नहीं करूँ, तो वे कैसे मुझे दीक्षा दे सकते हैं? यह एक महान कथन था। मैंने सोचा कि श्रीरामकृष्ण से दीक्षा प्राप्त करना सचमुच एक महान आशीर्वादस्वरूप होगा! मैं उन्हें इष्ट के रूप में भले ही स्वीकार न करूँ, किन्तु मैं निश्चय ही उन्हें गुरु के रूप में स्वीकार करता हूँ। इस ज्ञान के आलोक में स्वामी यतीश्वरानन्द जी का यह कथन महत्त्वपूर्ण हो जाता है कि यदि मैं दीक्षा न लूँ, तब भी वे मेरे गुरु रहेंगे और मेरा मार्गदर्शन करेंगे।

मेरे संशय समाप्त हो गए। मैंने सायंकाल स्वामी यतीश्वरानन्द जी से पुन: मिलकर उन्हें अपना निर्णय बताया। तब उन्होंने अगले दिन प्रात:काल मुझे मंत्र-दीक्षा दी। मुझे श्रीरामकृष्ण का मंत्र नहीं दिया गया।

स्वामी यतीश्वरानन्द जी का व्यक्तित्व अत्यन्त आकर्षक और मनोमुग्धकर था। उनके भीतर एक दिव्य आकर्षण था। उनसे प्राय: बार-बार मिलने की मेरे मन में एक सूक्ष्म इच्छा रहती थी और उपर्युक्त प्रसंग में उसी इच्छा से प्रेरित होकर मैं उनसे मिलने जाता था।

स्वामी यतीश्वरानन्द जी के साथ हैदराबाद में

सम्भवत: अगले वर्ष मैं श्री रवि, डॉ० खेर और उनकी पत्नी के साथ हैदराबाद गया। स्वामी सत्स्वरूपानन्द जी उस समय पुराने बेगमपेट आश्रम में थे और उन्होंने स्वामी यतीश्वरानन्द जी को आमंत्रित किया था। अत: हमलोग अवसर का लाभ उठाते हुए वहाँ चले गए। स्वामी यतीश्वरानन्द जी से हुई मेरी बातचीत इस प्रकार है –

(क) उनके साथ टहलते हुए मैंने कहा कि मैं ध्यान करना चाहता हूँ, किन्तु जप में आनन्द नहीं आता। वे रुक गए और अपने सामने के मार्ग की धूल पर अपनी छड़ी से कुछ पंक्तिबद्ध बिन्दु बना दिए और कहा – ''यह जप है।'' फिर उसी छड़ी की नोक से उन्होंने उन बिन्दुओं को एक सीधी पंक्ति में मिलाते हुए कहा – ''यह ध्यान है।''

(ख) मैंने पूछा कि कभी-कभी ध्यान अच्छा होता है और मुझे इष्टदेव की सुस्पष्ट झलक मिलती है और कभी-कभी यह झलक स्पष्ट नहीं होती। हम लोग आमने–सामने बैठे थे। उन्होंने एक कपड़ा लेकर हम दोनों के बीच फैला दिया और कहा कि इसी तरह माया स्पष्ट दर्शन को छिपा देती है।

(ग) काम-विकार की समस्या के बारे में उन्होंने कहा – ''आत्मबुद्धि विकसित करो।'' फिर उन्होंने कहा, ''किन्तु यह हँसी-मजाक नहीं है।''

(घ) रात में हम लोग प्रथम तल के बरामदे में बैठकर रामकृष्ण (जिन्होंने बाद में रामकृष्ण मिशन छोड़ दिया) नामक एक ब्रह्मचारी सेवक के साथ भजन गाया करते थे। जब उन्होंने ऐसा सुना, तो इसके बारे में पूछने लगे और जब उन्हें बताया गया कि हम लोग भजन गा रहे थे, तो वे बहुत खुश हुए। **(क्रमश:)**

प्रश्नोपनिषद् (१५)

श्रीशंकराचार्य

(सनातन वैदिक धर्म के ज्ञानकाण्ड को उपनिषद् कहते हैं। हजारों वर्ष पूर्व भारत में जीव-जगत् तथा उससे सम्बद्ध गम्भीर विषयों पर प्रश्न उठाकर उनकी जो मीमांसा की गयी थी, ये उन्हीं के संकलन हैं। वैदिक धर्म की पुनः स्थापना हेतु आचार्य ने इन पर सहज-सरस भाष्य लिखकर अपने सिद्धान्त को प्रतिपादित किया था। प्रश्नोपनिषद् पर लिखे उनके भाष्य का हिन्दी अनुवाद 'विवेक-ज्योति' के पूर्व-सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी द्वारा किया गया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' के पाठकों हेतु प्रस्तुत किया जा रहा है। –सं.)

कथम् -

कैसे (स्तुति) करने लगीं? –

एषोऽग्निस्तपत्येष सूर्य एष पर्जन्यो मघवानेष वायुः।
एष पृथिवी रयिर्देवः सदसच्चामृतं च यत्।।५।। (२१)

अन्वयार्थ – **एषः** ये प्राण **अग्निः** अग्निरूप (सन् होकर) **तपति** प्रज्वलित होते हैं, **एषः** ये **सूर्यः** सूर्यरूप में प्रकाशित होते हैं, **एषः** ये **पर्जन्यः** मेघरूप में वर्षा करते हैं, (एषः ये) **मघवान्** इन्द्ररूप में असुर-संहार करते हैं, **एषः** ये **वायुः** वायुरूप में प्रवाहित होते हैं, **एषः देवः** ये देव **पृथिवी** पृथ्वी-रूप में सबके धारक हैं, **रयिः** चन्द्रमा-रूप में सबके पोषक हैं, (और ये ही) **सत्** स्थूल, **च** तथा **असत्** सूक्ष्म **च** और **यत्** जो **अमृतम्** अमृत है, (वह भी हैं)।

भावार्थ – ये प्राण (ही) अग्निरूप (होकर) प्रज्वलित होते हैं, ये सूर्यरूप में प्रकाशित होते हैं, ये मेघरूप में वर्षा करते हैं, (ये) इन्द्ररूप में असुर-संहारक हैं, ये वायुरूप में प्रवाहित होते हैं, ये ही देव पृथ्वीरूप में सबके धारक हैं, चन्द्रमा-रूप में सबके पोषक हैं, (और ये ही) स्थूल, तथा सूक्ष्म और जो अमृत है, (वह भी हैं)।

भाष्य – एष प्राणः अग्निः सन् तपति ज्वलति, तथा एष सूर्यः सन् प्रकाशते, तथा एष पर्जन्यः सन् वर्षति। किं च मघवान् इन्द्रः सन् प्रजाः पालयति, जिघांसति असुर-रक्षांसि।

भाष्यार्थ – ये ही प्राण अग्नि होकर प्रज्वलित होते हैं, ये ही सूर्य होकर प्रकाश देते हैं, इसी प्रकार ये ही बादल होकर बरसते हैं; यहाँ तक कि ये ही इन्द्र होकर प्राणियों का पालन करते हैं और असुरों तथा राक्षसों के वध की इच्छा करते हैं।

एषः वायुः आवह-प्रवह-आदि-भेदः। किं च एषः पृथिवी रयिः देवः सर्वस्य जगतः सत् मूर्तम् असत् अमूर्तं च अमृतं च यत् देवानां स्थिति-कारणं।।

ये ही आवह, प्रवह आदि भेदोंवाले वायु हैं; इसके अतिरिक्त ये ही पृथ्वी हैं; सम्पूर्ण जगत् के रयि देव अर्थात् अन्न हैं; (और ये ही) स्थूल, सूक्ष्म और देवताओं की स्थिति के कारण-स्वरूप अमृत हैं।।५।। (२१)

* * *

किं बहुना —

अधिक क्या कहें –

अरा इव रथनाभौ प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम्।
ऋचो यजूँषि सामानि यज्ञः क्षत्रं ब्रह्म च।।६।। (२२)

अन्वयार्थ – **रथनाभौ** रथचक्र की नाभि में **अराः** अराओं **इव** के समान **सर्वं** सब कुछ **प्राणे** प्राण में **प्रतिष्ठितम्** अवस्थित है। (इसी प्रकार) **ऋचः यजूँषि सामानि** ऋक्, यजुः तथा साम वेदों के मंत्र, यज्ञः यज्ञ, **क्षत्रं** (सबके रक्षक) **क्षत्रिय च** तथा **ब्रह्म** (यज्ञ आदि के पुरोहित) ब्राह्मण – (तस्मिन् प्रतिष्ठितम्) (ये सभी उस प्राण में ही प्रतिष्ठित है)।

भावार्थ – रथचक्र की नाभि में अराओं के समान – सब कुछ प्राण में गुँथा हुआ है। (इसी प्रकार) ऋक्, यजुः तथा साम वेदों के मंत्र, यज्ञ, (सबके रक्षक) क्षत्रिय तथा (यज्ञ आदि के पुरोहित) ब्राह्मण – (ये सभी उस प्राण में ही प्रतिष्ठित हैं)।

भाष्य – अरा इव रथनाभौ श्रद्धा आदि नामान्तं सर्वं स्थिति-काले प्राणे एव प्रतिष्ठितम्। तथा ऋचः यजूंषि सामानि

शेष भाग पृष्ठ ३६६ पर

श्रीमद्भागवत और भगवान श्रीकृष्ण

सुरेशचन्द्र श्रीवास्तव, ग्वालियर

भागवत का प्रधान उद्देश्य भगवान् श्रीकृष्ण की महिमा और कीर्ति का प्रतिपादन करना तथा उनके श्रीचरणों में भक्ति उत्पन्न करना है। शेष विषय-वस्तु और यहाँ तक कि अन्य अवतारों के वर्णन का उद्देश्य इस मुख्यवस्तु 'कृष्णभक्ति' को पाने के लिये ही है। किसी भी ग्रन्थ का तात्पर्य उपक्रम और उपसंहार के आधार पर किया जाता है। इस दृष्टि से भागवत का प्रथम स्कन्ध तथा अन्तिम तीन स्कन्धों की विषयवस्तु भी कृष्ण-महिमा का विस्तारपूर्वक वर्णन करते हुए उनके पादपद्मों में भक्ति उत्पन्न करना है। उदाहरणार्थ यहाँ प्रथम स्कन्ध के नैमिषारण्य क्षेत्र में शौनक और सूतजी के संवाद को उद्धृत किया जा सकता है – ''प्यारे सूतजी आपका कल्याण हो। आप तो जानते ही हैं कि यदुवंशियों के रक्षक भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्ण वसुदेव की धर्मपत्नी देवकी के गर्भ से क्या करने की इच्छा से अवतीर्ण हुए थे? वे लीला से ही अवतार धारण करते हैं – श्रीहरि की कथा सुनने के लिए हमें अवकाश प्राप्त है''। सम्पूर्ण भागवत का उद्देश्य इन्हीं प्रश्नों का उत्तर देने के लिए ही है। पुन: व्यासदेव द्वारा भागवत की रचना करने का एक मात्र उद्देश्य भी भगवान् वासुदेव की महिमा का बखान करना था। भागवत में बतलाया गया है कि व्यासदेव जब अवसादग्रस्त और असन्तुष्ट मन से बैठे हुए थे और अपने असंतोष का कारण जानने की चिन्ता में डूबे हुए थे, तब देवर्षि नारद उनके समक्ष प्रकट हुए तथा उन्हें समझाने लगे कि अभी तक आपने अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष इन चार पुरुषार्थों का ही प्रतिपादन किया है (१/५/९)। जीवन के पंचम पुरुषार्थ भगवान् वासुदेव के प्रति अहैतुकी भक्ति के सम्बन्ध में कुछ भी विवेचन नहीं किया और इस उपदेश के परिणामस्वरूप भागवत की रचना की गई, जिसका वर्णन इस प्रकार है –

''अन्य रचनाओं में परमात्मा श्रीहरि जो कलि के समस्त पापों को नष्ट कर देते हैं, उनका वर्णन सम्पूर्ण रूप से नहीं किया गया है, परन्तु भागवत के प्रत्येक भाग में उनकी महिमा का गायन किया गया है।''

पुन: भगवान् श्रीकृष्ण जब धर्म, ज्ञान आदि के साथ अपने परम धाम को पधार गये, तब इस कलियुग में जो लोग अज्ञान रूपी अन्धकार से अन्धे हो रहे हैं, उनके लिए यह पुराण रूपी सूर्य प्रकट हुआ (१/१/४३)। जो लोग उनकी लीलाओं को श्रद्धा के साथ नित्य श्रवण एवम् कथन करते हैं, उनके हृदय में थोड़े ही समय में भगवान् प्रकट हो जाते हैं। श्रीकृष्ण कान के छिद्रों के द्वारा अपने भक्तों के भावमय (भावसरोरुहम्) हृदय कमल पर जाकर बैठ जाते हैं और जैसे शरद ऋतु जल मलीनता को मिटा देती है, वैसे ही वे भक्तों का मनोमल नाश कर देते हैं। जिसका हृदय शुद्ध हो जाता है, वह श्रीकृष्ण के चरण कमलों को एक क्षण के लिए भी नहीं छोड़ता, जैसे मार्ग के समस्त क्लेशों से छूटकर घर आया हुआ पथिक अपने घर को नहीं छोड़ता।'' (२/८/४-६)। भागवतपुराण न केवल सार रूप में अपितु सम्पूर्ण रूप से भगवान् श्रीकृष्ण से ओतप्रोत है। इसके दशम, एकादश तथा द्वादश स्कन्ध तो पूरी तरह से उनकी लीला और उपदेशों से परिपूर्ण हैं।

श्रीकृष्ण और महाविष्णु – सभी ओर से विचार करते हुए यह निरापद रूप से कहा जा सकता है कि श्रीमद्भागवत एक वैष्णव शास्त्र (मा. ६/८२) है तथा इसमें भगवान् विष्णु के अवतारों की लीलाओं का वर्णन एवम् भागवत धर्म का प्रतिपादन किया गया है। परन्तु कृष्णोपासक सम्प्रदायों के द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण एवम् महाविष्णु के सम्बन्ध को लेकर तथ्य को जटिल बना दिया गया है। कृष्णोपासकों का कहना है कि भगवान् श्रीकृष्ण महाविष्णु के अवतार न होकर एक अवतारी है, महाविष्णु श्रीकृष्ण के विस्तार हैं।

यद्यपि उदारमना भक्तों के लिए श्रीकृष्ण और महाविष्णु के बीच यह विभेद नगण्य है। उदारमना वैष्णव श्रीकृष्ण और महाविष्णु के बीच तात्त्विक एकता के दर्शन करते हैं। परन्तु भागवत जैसे उदार ग्रन्थ से समर्थन चाहने के कारण यह बिन्दु विचारणीय अवश्य है। डॉ. सिद्धेश्वर भट्टाचार्य द्वारा अपने चैतन्य सम्प्रदायपरक शोध कार्य में प्रतिपादित किया गया है कि महाविष्णु श्रीकृष्ण के विस्तार हैं। यह प्रतिपादन भागवत के इस सिद्धान्त पर आधारित है कि अन्य अवतार पुराण पुरुष के अंश या कलावतार हैं। जबकि श्रीकृष्ण तो स्वयं भगवान् हैं (१/३/२८)। निश्चित ही इस श्लोक में श्रीकृष्ण को साक्षात् भगवान् बतलाया गया है। परन्तु भागवत में सर्वत्र ही श्रीकृष्ण को भगवान् विष्णु का अवतार बतलाया गया है। जन्म के समय भी भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं को चतुर्भुजी रूप में ही प्रकट करते हैं तथा जगत से अन्तर्धान होने पर श्रीकृष्ण ने विष्णु के विग्रह में प्रवेश किया। इन सभी विवरणों से स्पष्ट हो जाता है कि भगवान् श्रीकृष्ण महाविष्णु के अवतार हैं। अत: इस दृष्टि से 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयं' का स्वाभाविक अर्थ होता है कि अन्य अवतारों की अपेक्षा श्रीकृष्ण का अवतार पूर्ण है। भागवत में भगवान् श्रीकृष्ण के विवरण में ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान, वैराग्य, माधुर्य और सौन्दर्य अन्य अवतारों की अपेक्षा सर्वाधिक एवम् पूर्ण है। इसी कारण उन्हें पूर्णावतार भी कहा जाता है। 'वे स्वयं भगवान् हैं' का तात्पर्य होना चाहिये कि उनमें भगवत्-अभिव्यक्ति अपनी पूर्णता पर पहुँची हुई है, न कि महाविष्णु उनके विस्तार हैं। वस्तुत: प्रत्येक अवतार ही भगवान् के साथ अभिन्न है, परन्तु तारतम्य केवल अभिव्यक्ति में है। अत: श्रीकृष्ण को साक्षात् भगवान् बतलाने में भाव की ही प्रमुखता है। आज के वैष्णवाचार्य एवम् चैतन्य महाप्रभु के भक्ति सिद्धान्त के प्रवर्तक कृपालुजी महाराज भी स्वीकार करते हैं कि अन्य अवतारों की तुलना में श्रीकृष्ण की लीलाओं में सर्वाधिक आकर्षण है। इसीलिये उन्हें स्वयं भगवान् कहा गया है। अत: साम्प्रदायिक आग्रह न रखते हुए सभी अवतारों की तात्त्विक एकता के सिद्धान्त को स्वीकार कर परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण की प्रेमाभक्ति का प्रतिपादन श्रीमद्भागवत को स्वीकार्य है।

भागवत में भगवान् का धाम एवं उनका रूप – अन्य पुराणों की तरह भागवत में भी उपासना के उद्देश्य से महाविष्णु को परम देव के रूप में प्रतिपादित एवं निरूपित किया गया है। भागवत में ब्रह्मा, विष्णु एवम् शिव को परम पुरुष भगवान् के गुणावतार को माना गया है, जिनके क्रमश: सृष्टि, स्थिति एवम् प्रलय तीन कार्य हैं। भागवत एक उदार ग्रन्थ है, जो रुचि और पात्रता भेद को स्वीकार करते हुए बृहत् समाज की आवश्यकता की पूर्ति करता है। यदि ऐसा न किया गया, तो पुराणों की रचना का उद्देश्य ही साधित नहीं हो सकता एवम् आध्यात्मिक विकास की दृष्टि से अधिकांश जनता पंगु हो जायेगी।

भागवत में सर्वत्र भगवान् के सात्त्विक रूपों की उपासना का ही समर्थन किया गया है। परन्तु साथ ही इस ग्रन्थ में साम्प्रदायिक आग्रह नहीं है। उपासना के अनुसार दिव्य लोकों तथा महाविष्णु के दिव्य ऐश्वर्य से युक्त दिव्य रूप का स्पष्ट वर्णन है तथा सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सार्ष्टि एवम् सायुज्य मुक्ति का विशद विवेचन भी किया गया है। भगवान् के धाम का नाम वैकुण्ठ है, जहाँ पहुँचकर जीव आवागमन के चक्र से मुक्त हो जाता है। वैकुण्ठ का वर्णन षडैश्वर्यपूर्ण है। ध्यान रहे कि यह दिव्य धाम स्वर्ग नहीं, अपितु भगवान् का नित्य धाम है। दिव्य आयुधों से युक्त भगवान् अपने नित्य धाम में वास करते हैं। यह धाम अतुलनीय सौन्दर्य से युक्त है, परन्तु इस वर्णन में इन्द्रियपरायणता तथा विलासिता का लेश मात्र भी नहीं है। वैकुण्ठ धाम के निवासी श्रीहरि का गुणगान करते रहते हैं। चारों ओर उनके पार्षद खड़े रहते हैं, जो भगवान् की सेवा में तत्पर रहते हैं। भगवान् के इस रूप का ध्यान करने को कहा गया है। परन्तु भगवान् का यह रूप भौतिक नहीं है। इसके साथ ही भगवान् के इस रूप के प्रतीकात्मक वैश्व रूप का भी संकेत है (१०/११/४-५०) परन्तु यह कोई कल्पना मात्र नहीं, अपितु एक अनुभूतिगम्य आध्यात्मिक तथ्य है।

भागवत का आह्वान – रसिक एवं भावुकजन ! यह श्रीमद्भागवत वेदरूप कल्पवृक्ष का परिपक्व फल है, जो श्रीशुकदेव रूप तोते की चोंच लग जाने से और भी अधिक मधुर हो गया है। यह रस ही रस है, छिलका या गुठली नहीं। जब तक शरीर में चेतना रहे, तब तक आप लोग इसका पान करते रहें ।

महर्षि व्यास ने इसकी रचना की है, जिसमें निष्कपट-निष्काम परम धर्म का निरूपण किया गया है। इसमें

शेष भाग पृष्ठ ३७६ पर

सारगाछी की स्मृतियाँ (१०६)

स्वामी सुहितानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के उपाध्यक्ष हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा देवी के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराजजी के साथ हुए वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से अनवरत प्रकाशित हो रहा है। पूज्य उपाध्यक्ष महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और वाराणसी के रामकुमार गौड़ ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमशः प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

०९.०४.१९६४

प्रातःकालीन भ्रमण करते हुए –

महाराज – उपनिषदों में मानों एक नया भाव मिलता है, अभिव्यक्ति की भाषा खोजने पर नहीं मिलती है। गीता की भाषा कितनी प्रांजल, जैसे इस प्रकार का प्रशस्त रास्ता है, (जिस रास्ते पर हम चल रहे थे, उस रास्ते को दिखाकर), किन्तु उपनिषदों का रास्ता उबड़-खाबड़ है।

तभी दिखाई पड़ा कि एक उन्नीस-बीस वर्ष का नवयुवक एक पालतू कुत्ते को लेकर घूम रहा है।

महाराज – देखो, इस आयु में यदि किसी एक महापुरुष की बातों का चिन्तन या संग कर पाता, तो यह नवयुवक महान हो सकता था। किन्तु कुत्ते की संगति करके यह पाशविक प्रवृत्तियों (सम्पदाओं) को ही विकसित करेगा। विकास नहीं होने से कुछ नहीं होता। इसे जबरदस्ती किसी महापुरुष का संग नहीं कराया जा सकता। भोग समाप्त नहीं होने से त्याग नहीं होता।

वह देखो – उसी आयु का एक अन्य नवयुवक अपने छोटे भाई या साथी को साथ लेकर जा रहा है और एक यह दृश्य कि तुम मुझे लेकर घूम रहे हो अर्थात् जिसके मन का जैसा भाव, वह उसी तरह के साथी को ढूँढ लेगा। शरीर और मन को सूक्ष्म बनाए बिना महापुरुष की संगति नहीं की जा सकती है। भीगे हुए (शिथिल) तन-मन को सुखा डालो (दृढ़ बनाओ), तभी काम बनेगा।

प्रश्न – अच्छा हमलोगों के लिए निर्धनता-व्रत क्यों अनिवार्य नहीं किया गया?

महाराज – निर्धनता-व्रत का अर्थ है निर्धनता का वरण करना। अर्थात् जो भोगों से तृप्त हैं, वे ही भोग्य वस्तुओं का कोलाहल नहीं चाहते, अल्प चीजों में ही संतुष्ट रहना चाहते हैं। हम सभी भोगी हैं, संसार का कुछ भी भोग नहीं हुआ, त्याग होगा कहाँ से? और भोग्य वस्तु को नहीं पाने तक, भक्त बनाते-बनाते (उसे ढूढ़कर सेवा करते-करते) कंगाली करते-करते दिन बीतेंगे। यही देखो न, स... को तो शरत महाराज ने संन्यास दिया है। वे लोग तो सबकुछ समझते थे। देखो न, पेन्शन रहने के कारण पैसे के लिए हाय-हाय नहीं करना पड़ा। मोक्षदा बाबू पैसा होने के कारण निश्चिन्त होकर घूमते रहते हैं।

सुनो एक मजेदार घटना हुई। तुम लोगों के चले जाने पर मैं तो काफी समय अकेला रहता हूँ। दो लोगों के एक साथ बैठने पर लोग काफी समय तक कितने प्रकार की बातों को लेकर चर्चा करते हैं। थोड़ा सोचकर देखता हूँ, तो पता चलता है कि हजारों रुपयों की हानि हुई, यही सब बातें, काफी समय तक अखबार की बातों पर चर्चा करते हैं। मानो उसे चूस रहे हैं। मैं समझ गया कि भोग पूरा हुए बिना व्याकुलता नहीं होगी।

साधु की पोशाक से समाज के सभी क्षेत्रों में शोषण होता है। यू.पी. में कुछ लोग थे, दिन में साधु की पोशाक में सब समाचार लेते और रात में डकैती करते। विशेष महाराज ने एक कहानी बताई है – एक जगह कुछ लोगों ने कपड़े सुखाने के लिए डाले थे। कुछ साधुओं को जाते हुए देखकर वे लोग बोले – अरे, कपड़ों को उठा लो, साधु लोग आ रहे हैं !

देखो, यदि सचमुच ही तैयारी रहे, तो साधु जीवन के समान आनन्दमय जीवन कहीं नहीं है। तैयारी नहीं रहने पर ही 'क्षुरस्य धारा' (कठिन पथ) – जीवन के सभी प्रकार के भोगों को समाप्त करके आना चाहिए। ध्यान में बैठने पर ठाकुर का स्मरण-चिन्तन नहीं आता, अर्थात् मन भीतर ही भीतर अन्य रस का आस्वादन करना चाहता है और मैं उसे बलपूर्वक दबाकर रखता हूँ। इसीलिए तनाव और संघर्ष है। अवचेतन मन का अध्ययन करना ही असली काम है।

इसीलिए तो बार-बार 'साधन और विघ्न' पढ़ने के लिये कहता हूँ। इसकी भाषा एक प्रकार की पहेली है, नए लोगों को समझने में असुविधा है।

भ्रमण करते समय क्या तुम कविता की आवृत्ति कर सकोगे? वैसा करने से अच्छा होगा। उस नए ब्रह्मचारी के लिए इस आयु में अधिक भावनाप्रवण होना अच्छा नहीं है, उसके लिए गीता पाठ ही अच्छा है।

१०-०४-१९६४

एक ब्रह्मचारी बार-बार बताने पर भी एक साधारण-सा कार्य भी ठीक से नहीं कर सकते हैं। प्रसंगानुसार महाराज ने कहा – चाकू में धार रहने पर उससे सब कुछ काटा जा सकता है। अच्छी चीज भी, खराब चीज भी। उसी तरह बुद्धि रहने पर उस बुद्धि का प्रयोग सभी क्षेत्रों में किया जा सकता है। जिन्हें व्यावहारिक सांसारिक ज्ञान नहीं है, उनके लिये ब्रह्मज्ञान बहुत कठिन है, क्योंकि संसार के सम्बन्ध में जानने के लिये कम ज्ञान की जरुरत होती है।

प्रात:कालीन भ्रमण करते हुए –

महाराज – अवतार के ऐश्वर्यरहित भाव को समझ पाना बड़ा कठिन है। निरैश्वर्य माधुर्य का भंडार है, उसे समझना कठिन है। माँ की बात को ही देखो न, माँ को समझना कितना कठिन है। अन्य किसी अवतार ने अपनी शक्ति के सम्बन्ध में इतने स्पष्ट रूप से नहीं बताया और कोई अवतार इतना गुप्त भी नहीं है। यह निरैश्वर्य भाव अत्यन्त आश्चर्यजनक है, यह केवल इसी देश में है। अन्य देशों में भक्ति बहुत है, किन्तु ऐश्वर्यरहित गोपाल केवल इसी देश में हैं। देखो न, गोपाल की माँ को, छोटा शिशु, दो लाल-लाल कोमल पैरवाले बाल गोपाल को पीठ पर लेकर जाती हैं, ठाकुर को देखकर (वह शिशु) उनमें विलीन हो गया। अद्‌भुत ! ठाकुर भी गोपाल के भाव में बिल्कुल लड्डू गोपाल हो गए, सुष्नी साग का व्यंजन खाने को मचलने लगे। अहा ! माँ भी ठीक ऐसी ही अद्‌भुत, स्वाभाविक (सरल) थीं ! तब मैं समझ नहीं पाया, हास-परिहास न करके मुझे उनके पास जाकर बैठे रहना उचित था। माँ से कहना था – 'माँ मेरी मलीनता साफ करके अपने पास रख लो।' यही अभिलाषा है कि अगले जन्म में जीवन भर माँ या ठाकुर के साथ-साथ सेवक बनकर रहूँ। हाँ, लेकिन उन्हें जान करके।

खूब याद है – एक बार मुझे सिलहट वापस जाना था। माँ को मैंने बताया। माँ उद्‌बोधन में थीं, आकर खड़ी हुईं। प्रणाम करने पर थोड़ी मिश्री देते ही उसे अपने मुख से स्पर्श कराकर मुझे वापस दे दीं, मैं कुछ कहा नहीं। फिर उस दिन दीक्षा के समय जप-विधि दिखाने के लिए उन्होंने हाथ बाहर निकाला, ठीक मेरे घर की माँ की तरह, वही तरकारी काटनेवाली उँगलियाँ। हाय ! हाय ! मैं कुछ भी समझ नहीं पाया ! घर की माँ में तो कितनीं बुद्धिमानी थी, कुछ ऐश्वर्य था, किन्तु ये तो अत्यन्त साधारण थीं। माकू के उस छोटे बच्चे की बात याद आ रही है, जाने के समय चार वर्षीय वह बालक फूलों से चरण-पूजा करके फिर उन फूलों को जेब में रखकर ले गया ! माँ नहबत में भी कैसे रहती थीं, ठीक मानो वनवासिनी सीता ! आह ! शौचालय के अभाव का कैसा कष्ट हुआ ! ज्योतिर्मय ठाकुर के ऊपर ठीक ही तो क्रोध करता है ! सच ही तो, ठाकुर यह देख नहीं पाए।

देखो, माँ के इन बच्चों का दो व्यक्तित्व है – एक बाह्य और दूसरा वास्तविक। बाह्य व्यक्तित्व में जैविक संस्कार देखने पर भी दो-चार दिन अच्छी तरह हिल-मिलकर देखो, तो पता चलेगा कि वे लोग एक-एक बालक हैं, वे किसी का अनिष्ट नहीं कर सकते हैं। वे सदा अनुभव करते हैं कि वे कितने महान व्यक्ति के स्वजन हैं। इसके अलावा, उस समय समझ न पाने पर भी बाद में जब माँ की बातों का प्रचार हो गया, तब भी वे यही समझते थे – बाबा, हम लोग इतने बड़े व्यक्ति के बच्चे हैं !

माँ प्राय: हर समय अक्षर अवस्था में कूटस्थ रहती थीं। इसीलिए अनेक लोगों ने यही कहा है कि माँ के पास जाने पर जिसके मन में जो विचार उठे हैं, माँ ने उसे उसी भाव से ही ग्रहण किया है। 'सर्वभूतस्थमात्मानम्' ! फिर इसी बात को ही उन्होंने सर्वसमावेशी पुराणों आदि में विविध रूप से बताने का प्रयास किया है। 'काकावन' का यही अर्थ है, अर्थात् उनके भीतर ही सब कुछ है।

गीता के विश्वरूपदर्शन की बात भी वही है। किन्तु उसे उस तरह समझाया गया है कि मानो एक-एक जादू है। घास के ऊपर चलने से ठाकुर की छाती में कष्ट, नौका में जाते समय कुछ स्वल्पाहार करने से सबको संतुष्टि (भूख मिटने) का अनुभव, नाविक के द्वारा दूसरे नाविक को थप्पड़ मारने

शेष भाग पृष्ठ ३८२ पर

डॉ. ओमप्रकाश वर्मा, रायपुर की तीन काव्य

देवश्रेष्ठ गणपति गणनायक

देवश्रेष्ठ गणपति गणनायक हो तुम अति मंगलकारी ।
दूर करो सबका भवबन्धन तुम हरो त्रिताप हमारी ।।
हे गौरीसुत ज्ञानमूर्ति तुम पिता तुम्हारे त्रिपुरारी ।
विमल बुद्धि के दाता हो तुम हो तुम सकल बिघ्नहारी ।।
सर्प तुम्हारा यज्ञसूत्र है मोदकप्रिय तुम हो भारी ।
भक्त शोकवन दावानल तुम सुन्दर तुम गजमुखधारी ।।
श्वेत वदन है शुभमति अनुपम हो तुम श्वेत वस्त्रधारी ।
मणि-माणिक्य सुपुजित तुम हो कृपा करो भवभयहारी ।।

कृष्णचन्द्र को मैं भजता हूँ

कृष्णचन्द्र को मैं भजता हूँ , कृष्ण हैं मेरे परम धाम ।
अच्युत केशव माधव मोहन, ये सब उनके बहुविध नाम ।
कृष्ण बिना यह जीवन सूना, कृष्ण जपूँ मैं आठों याम ।
कृष्ण ईश हैं, परम तत्त्व हैं, कर्ता होकर हैं निष्काम ।।
सत्य सनातन हैं मुरलीधर, धर्मप्रचालन उनका काम ।
भक्तजनों से नित पूजित हैं, भक्तहृदय ही उनका धाम ।।
कृष्णचन्द्र हैं गीतागायक, योगेश्वर है उनका नाम ।
कृष्ण जगद्गुरु गोपालक हैं, भवभयहारी चिर सुखधाम ।
परमानन्दकंद वंशीधर, वृन्दावन जिनका प्रिय धाम ।
विमल कान्तिधर गोकुलनायक,रूप नित्य है अति अभिराम ।।
निखिल हृदय में जो बसते हैं, राधिकाराधित पूर्णकाम ।
परम प्रेममय उन माधव के, चरणों में शतकोटि प्रणाम।।

प्यारा भारत देश हमारा

आत्मतत्त्व की महिमा गाता प्यारा भारत देश हमारा ।
ऋषि-मुनियों के तप-जीवन ने, इसको सुन्दर सदा सँवारा।।
ज्ञानसूर्य है यहाँ चमकता, करता जग को नित उजियारा ।
विश्वप्रेम की धारा बहती, सारा विश्व कुटुम्ब हमारा ।।
गिरिशृंगों में बर्फ चमकते, सुरभि समीरण बहता प्यारा ।
कलकल करती नदियाँ बहतीं, यह लगता है अनुपम न्यारा।।
यहाँ नहीं झगड़ा धर्मों का, नहीं आपसी बैर हमारा ।
सकल विश्व में अमन-चैन हो, यही हमारा सुन्दर नारा ।।
भारत अपनी देवभूमि है, यही स्वर्ग है नित्य हमारा ।
इसके चरणों की पूजा में, अर्पित है तन-मन-धन सारा ।।
ऐसा देश कहाँ पर होगा, सुख देवे जो जग को सारा ।
हम भारत में जन्म लिये हैं, यह है अति सौभाग्य हमारा ।।

इफ्तिकार की शौर्य गाथा

मीनल जोशी, नागपुर

'इफ्तिकार भट' नामक एक नवयुवक जिसके कंधे तक लम्बे बाल हैं, अच्छी पश्तूनी बोलता है, परम्परागत कश्मीरी पठान का वेष धारण कर, हिज़बुल मुजाहिद्दीन के पास पहुँचता है और भारतीय सेना के साथ युद्ध करने की इच्छा प्रकट करता है। कारण स्टोन पेल्टिंग – पथराव बाजी में भाई की मृत्यु। 'इफ्तिकार भट' की जाँच की जाती है। उसके परिवार आदि के बारे में छान-बीन होती है। नवयुवक की सत्यता पर विश्वास करके उसे प्रशिक्षण के लिए पाकिस्तान भेजा जाता है। वहाँ सबको उसके असाधारण उत्साह, नेतृत्व क्षमता, निडरता और धार्मिक विचारधारा के प्रति समर्पण का परिचय होता है। अत: उसको 'नियंत्रण रेखा – (LOC)' पार कराकर भारतीय सेना की बाहरी चौकी पर हमला करने के लिए चुना जाता है। इस अभूतपूर्व घटना को कार्यान्वित करने हेतु इफ्तिकार भट को प्रशिक्षण के लिए 'अब सबजर और अबु तोरार' (इस घटना के लिये आतंकवादियों के बदले हुए नाम) के पास भेजा जाता है। ये दोनों 'हिज़बुल मुजाहिद्दीन' के कमांडर थे। दशकों से इन आतंकवादियों ने उनके क्षेत्र में उग्रवादी घटनाओं का नेतृत्व किया था। इफ्तिकार भट ने अपने नेताओं को भरोसा दिलाया कि वह भारतीय सेना की चौकी पर हमला करने में सक्षम है। वह भारतीय सेना का ज्यादा से ज्यादा नुकसान कर सकता है। इफ्तिकार भट अपने नेताओं को सुविधाजनक स्थान पर ले गया। उसने अपनी सारी योजना विस्तार के साथ आतंकवादियों को समझायी। इस प्रकार इफ्तिकार भट ने अपने नेताओं को अपने कौशल से प्रभावित कर दिया। किन्तु फिर भी उनमें से एक 'अबु सबजर' को संशय था कि यह नवयुवक भारतीय सेना पर हमला करने की इतनी सुव्यवस्थित योजना कैसे बना सकता है? उसने इफ्तिकार भट से उसके आसपास की परिस्थिति पारिवारिक पृष्ठभूमि के बारे में पूछना शुरू किया। इफ्तिकार भट ने अपने ऊपर आशंका जतानेवाले उन नेताओं को अपनी AK-47 बन्दूक दे दी और कहा कि वे उसे मार सकते हैं। वह स्वयं कुछ कदम दूर गया। थोड़ी दूर जाते ही उसने TOKAREV 9mm पिस्तौल निकाली और इन दोनों आतंकवादियों के माथे और सीने पर गोलियाँ चलाकर उन्हें मार गिराया। उन आतंकवादियों को पता ही नहीं चला कि किसने और क्यों मारा ! इफ्तिकार भट ने शान्ति से सारे शत्रास्त्र उठाये और पास के भारतीय कैम्प की ओर चल दिया। यह पराक्रम करने वाले 'इफ्तिकार भट' का असली नाम था 'मेजर मोहित शर्मा' – 1 PARA SF.

मेजर मोहित शर्मा

'मेजर मोहित शर्मा' का जन्म १३ जनवरी, १९७८ को रोहतक, हरियाणा में हुआ। बचपन में वे चंचल थे, किन्तु पढ़ाई में अच्छे थे। उन्हें हमेशा कुछ अलग करने का जुनून रहता था। दिल्ली पब्लिक स्कूल, गाजियाबाद से बारहवीं की परीक्षा देने के बाद शेगाँव इंजीनियरिंग कॉलेज, महाराष्ट्र में उन्होंने प्रवेश लिया। उसी समय उन्होंने राष्ट्रीय रक्षा अकादमी – NDA की परीक्षा उत्तीर्ण कर ली थी। माता-पिता ने परीक्षा परिणाम छिपाना चाहा था, किन्तु मोहित शर्माजी ने परीक्षा परिणाम पता कर लिया और इंजीनियरिंग कॉलेज छोड़कर साक्षात्कार देने के लिये भोपाल पहुँच गये। वहाँ वे परीक्षा में उत्तीर्ण हुए और इस तरह उन्होंने १९९५ में भारतीय रक्षा अकादमी NDA में प्रवेश लिया। मोहित शर्मा उत्कृष्ट घुड़सवार, तैराक, बॉक्सर थे। उनमें अदम्य साहस था। उन्होंने वर्ष १९९९ से २००३ तक मद्रास रेजिमेंट में सेवा दी। उसके बाद वे PARA COMMANDO TRAININAG (SPECIAL FORCE)... में सहभागी हुए। प्रशिक्षण के बाद उन्हें कश्मीर भेजा गया। कैप्टन मोहित शर्मा जी की आतंकवादियों के साथ अनेक बार मुठभेड़ हुई। हर बार वे अपने युद्ध-कौशल और उच्च श्रेणी के नेतृत्व का परिचय देते थे। ऊपर निर्देशित घटना २००४ साल की है। ११ दिसम्बर २००५ में मोहित शर्मा जी को उनके अतुलनीय पराक्रम के लिये 'सेना पदक' से सम्मानित किया गया। फिर वे बेलगाँव में कमांडो प्रशिक्षण के लिये नियुक्त हुए। दो साल बाद मेजर मोहित शर्मा जी ने अपना स्थानान्तरण कश्मीर करा लिया।

मेजर मोहित शर्मा गुरिल्ला युद्ध में निपुण थे। वे कश्मीरियों के साथ उठते-बैठते, उनके साथ घने जंगलों में घूमकर सब जानकारी रखते थे। वर्ष २००९ में वे जम्मू कश्मीर के कुपवाड़ा जिले में एक अग्रिम टुकड़ी का नेतृत्व कर रहे थे। २१ मार्च को उन्हें उत्तर कश्मीर के हफ्रुदा जंगलों में आतंकवादियों के छिपे होने की सूचना मिली। वह कश्मीर में आम चुनाव का समय था। कोई बड़ी घटना करने के लिये बड़ी संख्या में आतंकवादियों की घुसपैठ हुई थी। मेजर मोहित शर्मा ने आतंकवादियों को घेरने के लिए सुव्यवस्थित योजना बनाई। अपने दल का नेतृत्व करते हुए उन्हें किसी संदिग्ध हरकत की आशंका हुई। मेजर मोहित शर्मा ने अपने साथियों को सावधान कर दिया। तभी अचानक तीनों ओर से आतंकवादी गोली चलाने लगे। दोनों ओर से भारी गोलाबारी होने लगी। इसमें भारतीय सेना के चार कमांडो घायल हुए। अपनी जान की परवाह न करते हुए मेजर मोहित शर्मा रेंगते हुए अपने साथियों के पास पहुँचे और दो साथियों को सुरक्षित स्थान पर लाने में सफल हुए। मेजर मोहित शर्मा उसके बाद अंधाधुंध बरसती गोलियों के बीच आतंकवादियों पर ग्रेनेड फेंकने लगे और इसमें उन्होंने दो आतंकवादियों को मार गिराया। किन्तु इसी बीच उनके सीने में गोली लगी। फिर भी मेजर मोहित शर्मा अपने कमांडो साथियों को निर्देश देते रहे। तभी अपने साथियों को खतरे में देखकर वे अत्यन्त साहस और शौर्य के साथ आगे बढ़े और दो आतंकवादियों को मार गिराया।

२१ मार्च, २००९ की यह एक भयंकर जंगी कारवाही थी। इसमें सत्रह आतंकवादी मारे गये। शत्रुओं से लोहा लेते हुए भारत माँ की रक्षा हेतु 'मेजर मोहित शर्मा' अपने आठ जवानों के साथ वीरगति को प्राप्त हुए। अपने साथी (2IC-SECOND IN COMMAND) को निर्देश देते हुए उनके अंतिम शब्द थे "Make sure, not one escapes – देखो, एक भी बच न निकले।''

मेजर मोहित शर्मा के अतुलनीय पराक्रम, प्रेरक नेतृत्व के लिए उन्हें मरणोपरान्त 'अशोक चक्र' से सम्मानित किया गया। उनका बलिदान व्यर्थ न जाए, यह प्रत्येक भारतीय का कर्तव्य है। हमारे प्रत्येक विचार और कार्य में देशप्रेम प्रतिबिंबित होना ही हमारी वीरों के प्रति सच्चे अर्थ में श्रद्धांजलि होगी। ○○○

पृष्ठ ३५९ का शेष भाग

इति त्रिविधा मन्त्रा: तत् साध्य: च यज्ञ: क्षत्रं च सर्वस्य पालयितृ ब्रह्म च यज्ञ-आदि-कर्म-कर्तृत्वे अधिकृतं च एव एष प्राण: सर्वम्।।

भाष्यार्थ – जैसे अरे रथचक्र की नाभि में स्थापित होते हैं, वैसे ही श्रद्धा से लेकर नाम तक (प्र. ६/४) – ये सभी (संसार में) अपनी स्थिति के समय, प्राण में ही स्थापित होते हैं। इसी प्रकार – ऋचा, यजुष् तथा साम – ये तीन प्रकार के (वैदिक) मंत्र, इनसे सिद्ध होनेवाले यज्ञ, सबका पालन करनेवाले क्षत्रिय और यज्ञ आदि कर्म करने में अधिकार-प्राप्त ब्राह्मण तक – यह सब कुछ प्राण ही है।।६।। (२२)

(क्रमश:)

गोपी तत्त्व

रामसनेही पाण्डेय, बिलासपुर

वृन्दावनधाम में गोप-गोपियाँ भगवान श्रीकृष्ण के आविर्भाव के पूर्व से ही विद्यमान थे। श्रीकृष्ण और गोप-गोपियों के बीच अक्षुण्ण और पवित्र सम्बन्ध था। भगवान की लीला में गोपियों का विशेष महत्त्व था। गोपी शब्द दो अक्षरों से बना है गो+पी। गो = इन्द्रियाँ और पी = पीना। जिसने समस्त इन्द्रियों से कृष्ण-रस का पान कर लिया है, वह गोपी है। गोपी भगवान कृष्ण के रस से परिपूर्ण है। गोपी-स्थिति एक उच्च स्थिति है, जो कृष्ण-भक्ति के रसिक प्राप्त करते हैं। सामान्यतया इन्द्रियाँ सांसारिक विषय-वासनाओं में लिप्त रहती हैं, जो जीवन को निम्न स्तर की ओर आकर्षित करती हैं। लेकिन यदि इन्द्रियों का अनुराग कृष्ण-भक्ति में हो जाय, तो जीवन के उच्चस्तर को प्राप्त करने में देर नहीं लगती। गोपी एक भाव है, जो कृष्ण-रस पान करनेवाले भक्त को ही प्राप्त होता है। भावना से कर्त्तव्य ऊँचा होता है। गोपी-भाव तो आत्मसमर्पण का भाव है। यह भाव अध्यातम में उच्च स्थिति है। गोपी कोई स्त्री या पुरुष नहीं है। गोपी एक जीवात्मा का प्रतीक है, जो प्रकृति है और ब्रह्म (कृष्ण) पुरुष हैं। गोपी और कृष्ण के बीच अटूट सम्बन्ध है। यह प्रेम रस से परिपूर्ण है। प्रेम के अतिरिक्त गोपी के हृदय में कुछ भी नहीं है। देवताओं के लिए भी गोपी बनना दुर्लभ है।

गोपियाँ कोई साधारण युवतियाँ नहीं थीं। वे जन्म-जन्मान्तर से ईश्वर का सान्निध्य प्राप्त करने की कठिन साधना कर रही थीं। वे उच्च कोटि की पवित्र आत्मायें थीं, जो कृष्ण-भक्ति के रस में सराबोर थीं। कृष्ण के अनन्य भक्त और उनके प्रेम में विह्वल थीं। धन्य हैं वे गोपिकाएँ जिनको बालरूप श्रीकृष्ण के साथ रमण करने का सुअवसर मिला। वे परम ज्ञानी थीं। कृष्ण को सुख पहुँचाने के लिए यम लोक या नरक में जाने को आतुर रहती थीं।

पौराणिक कथा के अनुसार त्रेतायुग में श्रीराम जब जनकपुर पहुँचे, तब वहाँ की वनिताओं में किसी ने पति के रूप में और किसी ने पुत्र के रूप में उन्हें पाने की लालसा की। कुछ पुरुषों ने उन्हें सखा या मित्र के रूप में पाने की इच्छा की। वन-गमन के दौरान भी कुछ पुरुषों और ललनाओं ने उन्हें पति या सखा के रूप में प्राप्त करने की इच्छा की।

श्रीराम मर्यादा पुरुषोत्तम थे। उन्होंने उनकी इच्छाओं को द्वापर कृष्णावतार में पूरा करने का विचार किया। कुछ ऋषि-मुनि, साधक और ऋषि-पत्नियों ने वृन्दावन में कृष्ण का सान्निध्य पाने के लिए जन्म लिया। श्रीरामचरितमानस में तुलसीदासजी राम-लक्ष्मण और सीताजी के वन-गमन का चित्रण करते हुए लिखते हैं –

आगें रामु, लखनु बने पाछें ।
तापस बेष बिराजत काछें ।।
उभय बीच सिय सोहति कैसें ।
ब्रह्म जीव बिच माया जैसें।। २/२२/१

वन-गमन के समय राम और लक्ष्मण के बीच सीता इसी प्रकार से शोभा पा रही हैं, जैसे ब्रह्म और जीव के मध्य में माया शोभायमान होती है। माया, परमात्मा और जीवात्मा के बीच की कड़ी है। ऋषि-मुनि और तपस्वी मार्ग में राम, लक्ष्मण और जानकी को चलते हुए देखकर ईर्ष्या करने लगे कि सीताजी के स्थान में काश हम होते। राम ने अपने भक्त-मुनियों के मन की बात जान ली और कृष्णावतार में उन मुनियों और मुनि-पत्नियों की इच्छा पूर्ण करने का विचार किया तथा उन्हें गोप-गोपी बनाया। अत: वृन्दावन की गोपियाँ त्रेतायुग की वे युवतियाँ या ऋषि-कन्याएँ या ऋषि-पत्नियाँ थीं, जिन्होंने इच्छा पूर्ति करने के लिये कृष्ण के जन्म के समय विराजमान हुईं।

मत्स्यपुराण के अनुसार, परमात्मा ने जब मत्स्यावतार ग्रहण किया, तब मछलियों ने उनके रूप से मोहित होकर मत्स्य भगवान के सान्निध्य-प्राप्ति की इच्छा की। अत: भगवान ने उनकी इच्छापूर्ति द्वापर युग कृष्णावतार में गोप-

गोपी बनाकर पूर्ण किया।

सत्युग में ही राजा बलि ने यज्ञ किया। यज्ञ-मंडप में भगवान ने वामन अवतार लेकर यज्ञ में प्रवेश किया। वामन भगवान का रूप अति मोहक था। राजा बलि की दैत्य-कन्याएँ वामन भगवान के रूप से मोहित होकर उन्हें पति के रूप में प्राप्त करने की इच्छा की। भगवान ने उनकी इच्छा भी द्वापर युग में गोप-गोपी के रूप में पूरी की।

वेद की ऋचाएँ हमेशा भगवान का गुणानुवाद करती रहती हैं। भगवान के प्रेम से ओतप्रोत होकर ये ऋचाएँ भगवान में मोहित होकर उनका सान्निध्य प्राप्त करने की लालसा करती हैं। भगवान ने उन ऋचाओं को भी गोपी रूप में अपना सान्निध्य कृष्णावतार में दिया। देवकन्याएँ एवं देवांगनाएँ भी भगवान के सामीप्य की कामना करती हैं। उनकी मनोकामना भी द्वापर में गोपी के रूप में कृष्ण ने पूर्ण किया।

अत: ब्रज की गोपियाँ साधारण ललनाएँ नहीं थीं। ये गोपियाँ कृष्ण की अनन्य भक्ति से ओतप्रोत थीं। त्रेतायुग के जनकपुर की कन्याएँ, वन की वनवासी बालाएँ, सतयुग की दैत्य कन्याएँ, मत्स्यावतार की मत्स्य कन्याएँ, ऋषि-मुनियों की पत्नियाँ और वेद की ऋचाएँ, ये सभी वृन्दावन की गोप-गोपिकाएँ थीं।

राधा प्रधान गोपी थी। कृष्ण और राधा दो शरीर एक प्राण थे। कृष्ण ही राधा या राधा ही कृष्ण थे। कहा जाता है कि कृष्ण ने अपने दो रूप प्रकट किये। कृष्ण का बायाँ अंग राधा और दायाँ अंग कृष्ण बना। उन दोनों में कोई भेद नहीं था। उनका प्रेम शाश्वत और अलौकिक था। लगभग ११ वर्ष ५८ दिन की उम्र में कृष्ण ने वृन्दावन छोड़ दिया था। अत: गोप-गोपिकाओं का कृष्ण-सान्निध्य बालकाल तक ही रहा। गोपी प्रेममय है। आनन्द और प्रेम एक-दूसरे से पृथक नहीं हैं। जैसे दूध से सफेदी, अग्नि से दाहकता, पृथ्वी से गंध अभिन्न है, वैसे ही श्रीकृष्ण और प्रधान गोपी श्रीराधा रानी का सम्बन्ध है। ब्रह्मवैवर्त पुराण के कृष्ण जन्म-खण्ड में उल्लिखित है –

यथा त्वं च तथाऽहं च, भेदो हि नावयोर्ध्रुवम्।
यथा क्षीरे च धावल्ये, यथाग्नेः दाहिका सति।।
यथा पृथिव्यां गंधः च, तथाऽहं त्वयि सन्ततम्।

श्रद्धेय श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार जी अपने एक लेख में लिखते हैं – श्रीराधारानीजी प्रेममय हैं और भगवान श्रीकृष्ण आनन्दमय हैं। जहाँ आनन्द है, वहाँ प्रेम है और जहाँ प्रेम है, वहीं आनन्द है। आनन्दरस सार घनीभूत विग्रह श्रीकृष्ण हैं और प्रेमरस सार घनीभूत मूर्ति श्रीराधा रानी हैं। अतएव श्रीराधा और श्रीकृष्ण का विछोह कभी सम्भव ही नहीं है। न राधा के बिना श्रीकृष्ण रह सकते हैं और न श्रीकृष्ण के बिना प्रधान गोपी श्रीराधारानी जी। अत: इससे सिद्ध होता है कि गोपी और कृष्ण एक-दूसरे से पृथक नहीं हैं। वे एक दूसरे की परछाई हैं। गोपियों का प्रेम कृष्ण के प्रति शुद्ध और पवित्र था। इस सन्दर्भ में रास-पंचाध्यायी का श्लोकार्ध अवलोकनीय है –

रेमे रमेशो ब्रज सुन्दरीभि-
र्यथार्भकः स्व प्रतिबिम्ब विभ्रमः।

– छोटे बालक जैसे अपनी परछाई से खेला करते हैं, वेसे ही रमेश अर्थात् कृष्ण भगवान अपनी प्रतिबिम्ब रूपी गोपी से खेला करते हैं। अत: गोपिकाएँ श्रीकृष्ण की परछाईं हैं।

श्रीरामभद्राचार्य जी अपने एक प्रवचन में कहते हैं – गोपिकाओं में राधा प्रधान गोपी हैं। राधा = रा (राष्ट्र) + धा (धारण) अर्थात् राष्ट्र का भरण-पोषण करनेवाली। राधारानी श्रीकृष्ण की धर्मपत्नी हैं। शेष १६१०८ रानियाँ पत्नियाँ हैं। राधा कृष्ण के मन (हृदय) में निवास करती हैं और अन्य पत्नियाँ रनिवास (राजमहल) में रहती हैं।

पौराणिक कथा के अनुसार ब्रह्माजी ने बालरूप कृष्ण को नवयुवक बनाकर गुप्त रूप से राधा का विवाह वृन्दावन धाम के जंगलों में कर दिया था। गोलोक में राधा ने श्रीदामा को राक्षस होने का श्राप दिया था। श्रीदामा ने राधा को भी श्रीकृष्ण का एक सौ वर्ष के वियोग का श्राप दिया था। श्रीकृष्ण वृन्दावन छोड़ने के १०० वर्ष के बाद ही श्रीराधाजी से मिले। वृन्दावन छोड़ने के समय श्रीकृष्ण ने प्रतिज्ञा की थी कि मेरी बंशी वृन्दावन के अलावा कहीं नहीं बजेगी और न कहीं रास होगा।

इस प्रकार से गोपी श्रीकृष्णरस से परिपूर्ण परम भक्त हैं। उनके बीच वासना का कोई स्थान नहीं था, बल्कि विशुद्ध पवित्र प्रेम-धारा ही बहती थी। प्रधान गोपी राधा श्रीकृष्ण की अर्द्धांगिनी हैं, जिसके प्रमाण-स्वरूप जगह-जगह राधा-कृष्ण के मंदिर हैं। श्रीकृष्ण के मन्दिर में राधा के अलावा किसी अन्य रानियों के लिए कोई स्थान भौतिक रूप से नहीं है। ○○○

मानव जीवन में आध्यात्मिक शान्ति की पिपासा और प्राप्ति

बिकेश कुमार सिंह, धनबाद

मानव जीवन का एकमात्र लक्ष्य है ईश्वर की प्राप्ति। और यह भी यथार्थ सत्य है कि हम जाने-अनजाने उसी लक्ष्य की ओर बढ़ रहे हैं। वर्तमान मानव समाज विज्ञान के क्षेत्र में काफी उन्नति कर चुका है और निरन्तर बहुत-से वैज्ञानिक प्रयोग किए जा रहे हैं। लेकिन इसके साथ-साथ आधुनिक मानव शान्ति की खोज में भी है, जो उसे नहीं मिल पा रही है। सच्चाई यह है कि हम आधुनिक संसाधनों में व्यस्त होकर उनमें ही शान्ति पाने का प्रयास कर रहे हैं। परिणामस्वरूप हमें शान्ति के बदले अशान्ति ही अधिक मिल रही है।

वास्तव में, हमारा आत्म-स्वरूप सत्-चित्-आनन्दमय है। स्वाभाविक है, जो हमारा मूल स्वभाव है, हम उसे ही प्राप्त करने का प्रयास करते हैं, किन्तु अपने अन्दर न खोजकर बाहर भौतिक वस्तुओं में खोजते हैं, यही भूल है। किसी महान विद्वान का कहना है, ''मन की शान्ति संसार में सबसे बड़ी सफलता है।'' लेकिन इस भोगवादी संसार में जहाँ भोग चरम पर है, मन की शान्ति हमें मिलेगी कैसे? स्वामी विवेकानन्द जी कहते हैं, हम दूसरों से जितना प्रेम करेंगे, उनकी सेवा करेंगे, उतना ही अधिक हमारा आत्मिक विकास होगा। स्वामीजी आत्म-विकास का सरल मार्ग बताते हुए कहते हैं कि दूसरों के बारे में रत्तीभर अच्छी बातें सोचने से ही तुम्हारी सुषुप्त शक्तियाँ जागृत हो जाएँगी। सोचो ! यदि तुम दूसरों के लिए अच्छा करोगे, तो तुम कितने आनन्द में रहोगे? इससे भी आगे स्वामीजी कहते हैं कि ईश्वर को तुम कहाँ ढूँढ़ते फिर रहे हो, ये गरीब, दुखी, पददलित, अज्ञानी, मेहतर आदि जीवन्त ईश्वर हैं। पहले निस्वार्थ भाव से इनकी सेवा करो। इनकी सेवा करते हुए अपने आप को धन्य समझो कि तुम्हें इस मानव जीवन में यह सेवा करने का महान अवसर प्राप्त हुआ है और इनकी सेवा कर के अपने मनुष्य जन्म को कृतार्थ करो।

हम जितना ही अपने जीवन में नि:स्वार्थ सेवा-भावना को बढ़ायेंगे, हमारा आत्मिक विकास भी साथ-साथ बढ़ता जाएगा। लेकिन इसके साथ एक शर्त यह है कि हममें अहंकार और स्वार्थ की गंध मात्र भी न हो। हमारे मन में ये कल्पना भी नहीं आनी चाहिए कि मैं ये सारे कार्य कर रहा हूँ। क्योंकि अहंकार ही सारे अनर्थों की जड़ है। कर्ताभाव को नष्ट करना होगा और अकर्ता भाव को अपनाना होगा। हमें भगवान से प्रार्थना करनी होगी – हे ईश्वर ! मैं तो एक यंत्र हूँ, आप जैसा कराएँगे, मैं वैसा ही करूँगा।

मानव ईश्वर की सबसे बड़ी रचना है। इसलिए मानव सेवा सर्वोत्तम कर्म है। हम जितना ही अधिक सेवा मार्ग में बढ़ेंगे, उतनी ही अधिक शान्ति हमारे जीवन में आयेगी। इसके साथ ही हम अपने दैनिक जीवन में आनन्द तथा शान्ति की अनुभूति करने लगेंगे, जो हमारा स्वरूप है, जिसकी प्राप्ति के लिये हम वर्षों से प्रयत्नशील थे।

शान्ति के राज्य में पहुँचने के मार्ग हैं – त्याग, सेवा, प्रेम और निस्वार्थता। हम अपने अंदर जैसे-जैसे इन गुणों को अपनाकर आगे बढ़ने लगेंगे, हमारा शान्ति का मार्ग आगे-आगे प्रशस्त होता जाएगा। इसी माध्यम से हम अपने मानव जीवन के सर्वोत्तम लक्ष्य अर्थात् ईश्वर को प्राप्त कर आध्यात्मिक शान्ति के राज्य में पहुँच जाएँगे। स्वामीजी कहते हैं कि "They who alone live who live for others". अर्थात् जीवन वे लोग ही जीते हैं, जो दूसरों के लिए जीते हैं। दूसरों के लिए जो भी कार्य हम नि:स्वार्थ भाव से करते हैं, वह ईश्वर की सर्वोत्तम उपासना है। श्रीरामकृष्ण देव ने 'शिव ज्ञान से जीव सेवा' करने को कहा है। हर मनुष्य में ईश्वर है और मनुष्य की सेवा ईश्वर की सेवा है। यही पूजा है।

आइए ! आज से ही हमलोग संकल्प लें कि त्याग, प्रेम, सेवा और निस्वार्थता के बल पर अपने मानव जीवन को सार्थक करेंगे। सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी ईश्वर हमारा मार्ग प्रशस्त करें और हम सबके जीवन में आध्यात्मिक शान्ति प्रदान करें। ○○○

भागवत में वैराग्य

मौनी स्वामी रविपुरी जी

प्रस्तुति – श्रीअखिलेश शास्त्रीजी, प्रसिद्ध भागवत कथाकार, वृन्दावन

परमहंस शुकदेवजी तथा राजा परीक्षित

श्रीमद्भागवत भक्तिशास्त्र के रूप में प्रसिद्ध है, किन्तु उसमें ज्ञान और वैराग्य सन्निहित है, ऐसा कम लोगों को ज्ञात है। वास्तविक रहस्य तो यह है कि श्रीमद्भागवत में ज्ञान-वैराग्य और भक्ति के सहारे निवृत्ति मार्ग को ही प्रकाशित किया गया है। स्पष्टतया उल्लेख है – **यत्र ज्ञान-विराग-भक्ति सहितं नैष्कर्म्यमाविष्कृतम्।।** गोकर्ण उपदेशमाला में आदेश है – **वैराग्य-राग-रसिको भव भक्तिनिष्ठ** – पहले वैराग्य मार्ग का पथिक बनो, फिर भक्तिनिष्ठ बनो। कुमारों का वचन हैं – **भक्तिज्ञानविरागाणां स्थापनाय प्रकाशितम्** – अर्थात् श्रीमद्भागवत भक्ति, ज्ञान और वैराग्य की स्थापना के लिए है। भक्ति दृष्टि से वैराग्य का तात्पर्य है – दूसरो न कोई। इसमें समर्थन है गोकर्ण भागवत। गोकर्ण-संवाद में स्पष्ट रूप से वही कहा गया, जो मीराजी ने कही – मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई। परन्तु गोकर्ण भागवत में ये क्रम स्वीकृत नहीं है। गोकर्ण भागवत में स्वीकृत है कि पहले दूसरो न कोई, फिर मेरे तो गिरधर गोपाल। कैसे? ''वैराग्य राग-रसिको भव भक्तिनिष्ठः।'' पहले वैराग्य राग के रसिक बनें, फिर भक्तिनिष्ठ हो जाएँ। बारम्बार यह कहा गया है कि वैराग्य की स्थापना के लिए ही श्रीमद्भागवत है। हम इसी की चर्चा करेंगे। लोग कहते हैं, साधक कहते हैं, भक्ति में परिपक्वता आने के पश्चात् ही वैराग्य की प्राप्ति होगी। लौकिक दृष्टि से नौ-दस महीने गर्भ-धारण करने के पश्चात् संतान की उत्पत्ति होती है। ऐसे ही भक्ति-माता के गर्भ में नौ-दस महीने के पश्चात् ज्ञान-वैराग्य की उत्पत्ति होगी। ऐसा मन्तव्य है लौकिक दृष्टि से आधिभौतिक वर्णन है, पर आध्यात्मिक जीवन में सार्थक नहीं है। निश्चित रूप से यहाँ ऐसा सम्भव नहीं है कि पहले भक्ति और नौ-दस महीने बाद फिर ज्ञान-वैराग्य की प्राप्ति होगी। क्योंकि भागवत का उद्घोष है – **भक्तिः परेशानुभवो विरक्तिरन्यत्र चैष त्रिक् एककालः**।

यह आध्यात्मिक जगत है, यहाँ ऐसी बात नहीं है कि पहले माँ, फिर नौ दस महीने बाद, पुत्र की उत्पत्ति होती हो। यहाँ तो तीनों एक साथ प्रकट हो जाते हैं। जिसके अन्दर पूर्ण रूप से शुद्धा भक्ति है, परा भक्ति है, दृढ़ भावना युक्त पूर्ण प्रेम के सहारे अकारण समर्पण है, उसके अन्दर वैराग्य और ज्ञान निश्चित है। जब हम शब्द पर विचार करते हैं, तो विचार करने की एक शैली होती है। भाष्यकार भगवान कहकर गए – श्रुति, युक्ति और महापुरुष के अनुभव, इसी के सहारे हमें विचार करना पड़ेगा। हम श्रुति और युक्ति से बहुत विचार करते हैं, परन्तु महापुरुषों का जो अनुभव है, उसके सहारे हम आगे नहीं बढ़ते हैं। शास्त्र में, भागवत में हमने सुन लिया कि पश्चिम प्रान्त में जाते ही भक्ति, ज्ञान और वैराग्य तीनों में जड़ावस्था आ गई। वृन्दावन में आकर भक्ति महारानी पुनः यौवन-लाभ की और ज्ञान-वैराग्य उसी अवस्था में पड़े रहे। यह तो शास्त्र से प्राप्त है। अनेकानेक युक्ति भी है, इसके पीछे। परन्तु महापुरुषों का वचन भी

कुछ और है, जिसे हमें स्वीकार करना पड़ता है। संतों के बीच में चर्चा करने पर यह पता चलता है कि भागवत में तो भक्ति, ज्ञान और वैराग्य तीनों का वर्णन है। परन्तु वैराग्य का एक मित्र संतोष भी है।

जब मित्र वैराग्य संतोष को छोड़ कर चला गया, तब वैराग्य में जड़ावस्था आ गई। संतोष का मित्र वैराग्य है, क्या इसका कोई प्रमाण है? इसका प्रमाण नाभाग चरित्र में मिलता है –

नाभागो नभगापत्यं यं ततं भ्रातरः कविम्।
यविष्ठं व्यभजन् दायं ब्रह्मचारिणामागतम्।।[१]

नाभाग गुरुकुल में पढ़ने लिखने के लिए गया था। वहाँ अच्छी तरह से अध्ययन करके उसके वापस आने से पहले ही, उसके भाइयों ने आपस में सम्पत्ति बाँट ली और उसके लिए कुछ नहीं रखा। नाभाग जब लौटकर आया, तो पूछा – '**भ्रातरो किं मह्यं**' – भैया मेरे लिए क्या रखा? सम्पत्ति में कुछ है मेरे लिये? उत्तर मिला – ये बूढ़ा बाप तू ले ले, **भजाम पितरं तव**। बहुत प्रसन्न हो गया नाभाग। हम इसके पिता नभग की व्युत्पत्ति करते हैं – न भगः – जिसके पास कोई ऐश्वर्य नहीं है, यश नहीं है, उसको कहते हैं नभग और उसका पुत्र है नाभाग – न अभागा, वह अभागा नहीं है। उसके अंदर है संतोष। संतोष वैराग्य का मित्र है। किन्तु उसने बाद में असीम धन-सम्पत्ति की प्राप्ति की। नाभाग को धन सम्पत्ति की प्राप्ति कैसे हुई? भगवत कृपा से। क्यों? **दैन्य प्रियत्वात्** (नारद भक्ति सूत्र) – जो दीन है, गरीब है, नम्र है, वह भगवान का प्रिय है। अनावश्यक विषय अगर मन से हम बिलकुल हटा दें, तो भगवत् कृपा होती है। भगवान जानते हैं कि इसका मन अब दीनता से परिपूर्ण है। इसके ऊपर कृपा करनी है।

वैराग्य का मित्र है संतोष। अतः हम किसी प्रकार से भी संतोष को न छोड़ें। संतोष के सहारे ही हम उस परमात्मा की, परमानन्द की प्राप्ति कर सकते हैं – **संतोषः परमो लाभः।** ये न हो, तो बड़ी कठिनाई आती है, हम जीवनभर ठोकर खाते हैं। पर वह ठोकर नहीं, शिक्षा है। जीवन में शिक्षा मिलती है, फिर भी हम शिक्षा नहीं लेते। ठोकर खायी विदुरजी ने। दुर्योधन कह रहा है –

क एनमत्रोपजुहाव जिह्मं दास्याः सुतं यद्वलिनैव पुष्टः।
तस्मिन् प्रतीपः परकृत्य आस्ते निर्वास्यतामाशु पुराच्छवसानः।।[२]

ये कुटिल है। इसको यहाँ किसने खड़ा किया? इस राज्य में क्यों है? जिसकी रोटी खाकर अपने को हृष्ट-पुष्ट किया, उसका ही साथ नहीं देता ! बिल्कुल विपरीत आचरण कर रहा है, निकालो इसको घर से। अभी निकालो। विदुरजी ने चुपचाप सब कुछ सुन लिया। बिना हथियार के योद्धा होते हैं संत। विदुरजी ने उसी क्षण दुर्योधन के सामने अपना हथियार छोड़ दिया। मुड़के देखा तो भाई धृतराष्ट्र कुछ नहीं बोले, भीष्म पितामह भी कुछ नहीं बोले।

ये मतलब की दुनिया है कौन किसका होता है।
धोखा वही देता है, जिस पर भरोसा होता है।।

भाई धृतराष्ट्र के सामने इस प्रकार मर्माहत होकर भी विदुरजी ने दुःख नहीं माना। उन्होंने सोचा कि ठाकुरजी की कृपा है। वाणी से की गयी चोट, सबसे कठिन चोट होती है। उसी चोट से विदुरजी में वैराग्य पूर्ण मात्रा में प्रकट हो गया। वैराग्य प्रकट होते ही वे भगवान की प्रतीक्षा करते हुए भवन छोड़कर चले गए ।

स इत्थमत्युल्बणकर्णबाणैर्भ्रातुः पुरो मर्मसु ताडितोऽपि।
स्वयं धनुर्द्वारि निधाय मायां गतव्यथोऽयादुरु मानयानः।।[३]

संत का स्वभाव होता है कि यदि कोई उसको गाली दे, चोट पहुँचाए, फिर भी वे कृपा ही करते हैं। जाते समय विदुरजी ने धृतराष्ट्र से कहा –

पितृभ्रातृसुहृत्पुत्रा हतास्ते विगतं वयः।
आत्मा च जरया ग्रस्तः परगेहमुपाससे।।
अहो महीयसी जन्तोर्जीविताशा यया भवान्।
भीमापवर्जितं पिण्डमादत्ते गृहपालवत्।।[४]

तेरे सब बच्चे मर गए। बाप-दादा कोई नहीं है। एक बूढ़े भीष्मपितामह हैं, वे भी शरशैय्या पर हैं। तेरी भी आयु चली गई। जड़ावस्था में पड़ा हुआ है। जिस भीम को मारने का प्रयास किया, वह कुत्ता के समान तेरे को रोटी फेंकता है और तू उसी के आधार पर जीवन बिता रहा है। वैराग्य नहीं है तेरे जीवन में। संसार का स्वरूप विदुरजी ने बता दिया। भाष्यकार ने उसको और सुन्दर रूप से बताया –

यावत् वित्तोपार्जनसक्तः तावत् निज परिवारो रक्तः।
पश्चात् जीवति जर्जर देहे वार्तां कोऽपि न पृच्छति गेहे।
भजगोविन्दं भजगोविन्दं गोविन्दं भजमूढमते।।

'वार्ता कोऽपि न पृच्छति गेहे' का यहाँ संकेत है। कुत्ता को जैसे रोटी दिया जाता है, ऐसे भीम तेरे को रोटी दे रहा

है, तू यहाँ पड़ा है।

गतस्वार्थमिमं देहं विरक्तो मुक्तबन्धनः।
अविज्ञातगतिर्जह्यात् स वै धीर उदाहृतः।।[५]

बंधन (ममता) काटकर निकलना और जिस मार्ग के बारे में कोई पता नहीं है, उस रास्ते में जो निकल जाता है, उसी को वीर कहा जाता है। इस प्रकार अनुज विदुर के द्वारा कहने पर '**प्रज्ञाचक्षुबोधितः आजमीढः**' माने उसका नेत्र, प्रज्ञाचक्षु (ज्ञान) प्रगट हो गया। सुभाषित का एक श्लोक है –

युक्तियुक्तं उपादेयं वचनं बालकादपि।
अश्रद्धेयं अयुक्तं त्वपि उक्त पद्मजन्मना।।

ब्रह्माजी भी अगर गलत शब्द कहें, अनुचित शब्द कहें, तो स्वीकार नहीं करना। एक बच्चा भी अगर उचित बात कहे, तो उसे स्वीकार कर लेना। अनुज विदुर का वचन स्वीकार कर धृतराष्ट्र ने घर छोड़ दिया। सब ममता काटकर वह निकल गया। उसके बाद गान्धारी भी पति के पीछे निकल गईं। कहाँ गए? हिमालय की ओर चले गए – संत का जो सुख है, उसको प्राप्त करने के लिए। वैराग्य के बिना संन्यास लेना अनुचित है। वेद का उद्घोष है –

यदा मनसि संजातं वैतृष्ण्यं सर्ववस्तुषु।
तदैव संन्यासमिच्छेत पतितः स्याद्विपर्यये।।

– हरेक वस्तु में जब वैराग्य प्रगट हो, तब संन्यास लेना चाहिए, नहीं तो पतन हो सकता है। संन्यास लेने के पश्चात् भी हम जगह-जगह से दृष्टान्त उठा-उठाकर कुछ न कुछ प्रवृत्ति करते रहते हैं। परन्तु उपनिषद् में निषेध है – **लोकसंग्रह युक्तानि नैव कुर्यात् न कारयेत्**। साधु को लोकसंग्रह करने की आवश्यकता नहीं है। भाष्यकार कहते हैं – **जनकृपा नैष्ठुर्यं उत्सृज्यताम्** – न कृपा करना, न निष्ठुर होना। अपने आप होता ही रहेगा सब। लोग दृष्टान्त देते हैं – स्वामी विवेकानन्द से लेकर अखण्डानन्द जी तक, सब लोग संग्रह करके गए। हम कहते हैं, दृष्टान्त कोई प्रमाण नहीं है। प्रमाण तो शास्त्र में है। भाष्यकार कह रहे हैं – अधिक प्रवृत्ति से विद्वान में भी वासना प्रकट होती है – **विदुषोऽपि अतिप्रवृत्त्या वासनावृत्तिः।** विदुरजी सब छोड़कर चले गए और भगवत कृपा से मैत्रेयजी प्रतीक्षा कर रहे थे। मैत्रेयजी ने विदुर को देखते ही कह दिया – विदुर विश्वास नहीं करना इस कामना-वासना के ऊपर। क्यों?

वाचं दुहितरं तन्वीं स्वयंभूर्हरतीं मन।[६]

श्रीब्रह्मा जी की अपनी कन्या के प्रति भी मानसिकता बदल गई थी –

अकामां चकमे क्षत्तः सकाम इति नः श्रुतम्।[७]

जो निष्काम भाव से सृष्टि कर रहे थे, वे भी अब अपनी पुत्री के पीछे भागने लगे। अतः वैराग्य चाहिए। अब इस प्रसंग में लोग बहुत इधर-उधर की बातें करते हैं। विशेषकर भाष्यकार ने जो वैराग्य का लक्षण बताया है –

तद्वैराग्यं जुगुप्सा या दर्शनश्रवणादिभिः।। फिर
विरज्य विषयव्रातादोषदृष्टया मुहुर्मुहुः।।

सुनने को मिलता है कि माता के गर्भ से जिसने जन्म लिया है, स्त्री के प्रति उसकी घृणा दृष्टि अनुचित है। वे लोग वैराग्य का लक्षण नहीं समझते। वैराग्य के लक्षण पर अच्छी तरह से ध्यान दें – उधर से आकर्षण का अभाव और इधर अशुभ दृष्टि का अभाव, इसको कहते हैं वैराग्य।

जीवन में कोई संकल्प करना ही नहीं है, तो जीवन में कामना को कोई स्थान भी नहीं है। वैराग्य की पुष्टि हो जाएगी।

शुभ संकल्प, अशुभ संकल्प के सहारे जीवन बनता है। शुभ संकल्प अगर अपने मन में हो, तो हम परमार्थ में आगे बढ़ सकते हैं। अशुभ संकल्प हो, तो संसार में फँस सकते हैं। स्थिति ऐसी है कि हम अपने अन्दर जो संस्कार हैं, उसको पहचानते ही नहीं। इसी के कारण हम फँसे रहते हैं। विदुरजी पूछ रहे हैं मैत्रेयजी को –

सुदुर्लभं यत्परमं पदं हरे-
र्मायाविनस्तच्चरणार्चनार्जितम्।
लब्ध्वाप्यसिद्धार्थमिवैकजन्मना
कथं स्वमात्मानममन्यतार्थवित्।।[८]

जो भगवान का परम पद है, वह सुदुर्लभ है। अत्यन्त साधन भजन करके उसको प्राप्त करके भी साधक क्यों विचलित हो जाते हैं? कैसे विचलित होते हैं? इसके लिये ध्रुव-चरित्र का थोड़ा-बहुत विश्लेषण करना पड़ेगा। ज्ञान और वैराग्य दोनों को साथ-साथ गुरु के सहारे लेकर चलना पड़ता है। परन्तु ध्रुव जब घर से राजगद्दी के लिए निकला था, तब गुरु मिल गए। हृदय में नारायण का दर्शन करने लगे। लगातार तपस्या से सृष्टि रुक गई। हाहाकार मच गया। नारायण प्रकट हो गए। ध्रुव ने देखा अन्दर तो नारायण

हैं नहीं। आँख खोलकर देखा, सामने नारायण खड़े हैं। कुछ बोल नहीं पा रहा था ध्रुव। इसका भागवत में वर्णन है। नारायण ने शंख स्पर्श कराके उसके मुख से श्लोक निकाला –

योऽन्तः प्रविश्य मम वाचमिमां प्रसुप्तां
संजीवयत्यखिलशक्तिधरः स्वधाम्ना।
अन्यांश्च हस्तचरणश्रवणत्वगादीन्।
प्राणान्नमो भागवते पुरुषाय तुभ्यम्।।[९]

भवच्छिदः पादमूलं गत्वायाचे यदन्तवत्।।[१०]

हाय ! हाय ! देखो मैं कैसा अभागा हूँ, मंद भाग्य हूँ। साक्षात् भगवान का चरण-कमल दर्शन करके भी मैंने राजगद्दी प्राप्त किया। मेरे को तो भगवान के धाम में उनके साथ ही जाना था। वैराग्य पीछे जागा, परन्तु वह अगर पहले जग जाता, तो कम से कम राजगद्दी पर बैठना नहीं पड़ता। ध्रुवलोक में जाना नहीं पड़ता। हम अपने संस्कार को ठीक से पहचानें कि कौन-सा संस्कार लेकर आगे बढ़ रहे हैं, किस संस्कार से जीवन चल रहा। शुकदेव जी कहते हैं –

न चेदिदहैवापचितिं यथांहसः
कृतस्य कुर्यान्मन उक्तिपाणिभिः।
ध्रुवं स वै प्रेत्य नरकानुपैति
ये कीर्तिता मे भवतस्तिग्मयातनाः।।[११]

मन-वाणी और क्रिया के सहारे इस जन्म में, यहीं बैठे-बैठे हम अपने संस्कार को अगर सुधार न लें, तो निश्चित रूप से वह व्यक्ति मरकर नरक जाएगा। व्यक्ति नरक जाएगा माने उसे सुख-दुख भोगना पड़ेगा, उसके लिए उसे दोबारा जन्म लेना पड़ेगा। इसलिए शुकदेव जी कहते हैं –

तस्मात् पुरैवाश्विह पापनिष्कृतौ यतेत।[१२]

मरने से पहले इस पाप से बचने के लिए हम प्रयत्न करें। भगवान सब जगह हैं। भगवान कृपा करने के लिए तैयार हैं। परन्तु हम साधना करने के लिए तैयार नहीं। हमने देखा गाय को ठंडी में घी और गुड़ मिलाकर खिलाते हैं। गाय को घी खिलाने की क्या आवश्यकता है, जब सम्पूर्ण शरीर में घी है? परन्तु वह घी शरीर के अंगपोषण में समर्थ नहीं है। दूध दूहकर, उससे घी बनाकर जब गाय को खिलाया जाता है, तब वह सार्थक होता है। कहते हैं न –

गवां सर्पिः शरीरस्थं न करोत्यङ्गपोषणम्।
तदेव कर्मरचितं पुनस्तस्यैव भेषजम्।।

वैसे ही सम्पूर्ण शरीर में परमात्मा है, साधन भजन से उसको प्रकट करके, उसकी अनुभूति करके अगर हम अपना जीवन बिताएँ, तब अपने सूक्ष्म शरीर को पोषण करने के लिए हम समर्थ होंगे। नहीं तो जन्म लेना व्यर्थ है। इस प्रकार से शुकदेवजी ने ध्रुव चरित्र में वैराग्य का संकेत दिया। ○○○

सन्दर्भ ग्रन्थ – **१.** श्रीमद्भागवत ९/४/१, **२.** वही, ३/१/१५, **३.** वही, ३/१/१६, **४.** वही, १/१३/२१-२२, **५.** वही, १/१३/२५, **६.** वही, ३/१२/२८, **७.** वही, ३/१२/२८, **८.** वही, ४/९/२८, **९.** वही, ४/९/६, **१०.** वही, ४/९/३१, **११.** वही, ६/१/७, **१२.** वही, ६/१/८.

कविता

आशुतोष जय अवढरदानी

भानुदत्त त्रिपाठी, मधुरेश

हे हर ! हरो सकल दुख मेरे, कोर कृपा की कर दो ।
कर दो अभय अखिल अग-जग में, हाथ शीश पर धर दो ।।
मारा-मारा फिरा जगत में बनकर मैं बेचारा,
अपना-अपनी में सब खोये, देख लिया जग सारा,
आशुतोष हे अवढर दानी ! प्रेम-भगति का वर दो
हे हर! हरो सकल दुख मेरे, कोर कृपा की कर दो।।
मात-पिता तुम, सुहृद-सखा तुम, तुम ही मेरे स्वामी,
अधिक कहूँ क्या तुमसे मन की, तुम हो अन्तर्यामी,
माया-मोह-मूढ़ता-गिरि को तिल-तिल करके क्षर दो,
हे हर ! हरो सकल दुख मेरे, कोर कृपा की कर दो।।
हे गिरिजापति, सदा, शंभु, शिव अज अनादि, अविनाशी,
मेरे हरो त्रिशूल शूल से काशीश्वर कैलाशी,
जान अनाथ, नाथ ! मुझको तुम भक्ति-सुधा से भर दो।
हे हर ! हरो सकल दुख मेरे, कोर कृपा की कर दो।।
राम रसायन के तुम दाता, तुम पर सब बलिहारी,
तुम में राम,राम में तुम हो, महिमा अमित तुम्हारी,
शरणागत 'मधुरेश' दीन को अपना लोक अमर दो ।
हे हर ! हरो सकल दुख मेरे, कोर कृपा की कर दो ।।

गीतातत्त्व-चिन्तन (२)

दशम अध्याय

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्दजी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के संस्थापक सचिव थे। उनका 'गीतातत्त्व-चिन्तन' भाग-१ और २, अध्याय १ से ६वें तक पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुका है और लोकप्रिय है। ८वाँ अध्याय 'विवेक ज्योति' के सितम्बर, २०१६ से नवम्बर, २०१७ अंक तक प्रकाशित हुआ था। अब प्रस्तुत है ९वाँ अध्याय, जिसका सम्पादन ब्रह्मलीन स्वामी निखिलात्मानन्द जी ने किया है – सं.)

भाव-समन्वित कर्म से ईश्वर-प्रेम की उपलब्धि

भगवान कहते हैं – इति मत्वा – ऐसा जानकरके, **भजन्ते माम्** – जो मेरा भजन या उपासना करता है। शरीर इत्यादि के कर्म, मेरी पूजा इत्यादि करता है और **भावसमन्विताः** – भावपूर्ण, श्रद्धा-भक्ति से करता है। भगवान का तात्पर्य यह हुआ कि साधक को क्या करना चाहिए। साधक की जो क्रियाएँ होती हैं, वे भावपूर्ण होना जरूरी हैं। मैं यदि कर्म केवल एक कर्तव्य पूरा करने के लिए करता हूँ, तो उस कर्म में कभी तीव्रता नहीं होगी। मैं जैसे-तैसे जल्दी से जल्दी उस कर्म को समाप्त करने की चेष्टा करूँगा। पर जब किसी कर्म से स्नेह जुड़ा हो, प्यार जुड़ा हुआ हो, जहाँ पर प्रेम से प्रेरित होकर हम कर्म करते हैं, वहाँ कर्म की कोई सीमा नहीं होती। हम वहाँ पर कर्म को मापते नहीं हैं – अरे, मैंने तो उसके लिए इतना कर दिया। बस, उतना उसके लिए पर्याप्त होना चाहिए। इस प्रकार की बात ही मन में नहीं उठती। वहाँ पर जितना हम करें, उतना ही हमें कम मालूम पड़ता है। इसीलिए कहा कि भावसमन्वित होकर कोई कर्म

किया जाता है, तो कर्म में किसी प्रकार की कोई सीमा नहीं होती। मनुष्य फिर कर्म ही करता है। वह जितना भी कर्म करे, उससे थकता नहीं। उसे ऐसा लगता है – यह जितना काम कर रहा हूँ, वह भी प्रियतम के लिए थोड़ा ही है। भगवान अर्जुन से कह रहे हैं, जो विवेकी जन कर्म करते वक्त इस प्रकार की बात मन में सोचता है, तो उसकी सभी क्रियाएँ मेरे निमित्त होने लगती हैं। वे पूजा या उपासना बन जाती हैं। तब क्या होता है? उसके बाद वह साधक अविकम्प योग से युक्त हो जाता है। वह मेरे साथ अटूट रूप से सम्बद्ध हो जाता है। जब ऐसी स्थिति प्राप्त होती है, तब क्या होता है?

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च।।९।।

मच्चित्ताः (जिनका मन मुझमें लगा है) मद्गतप्राणाः (जिनके प्राण मुझमें ही अर्पित हैं) परस्परम् बोधयन्तः च कथयन्तः (जो आपस में मेरी ही चर्चा करते हुए) नित्यम् तुष्यन्ति च (सदैव सन्तुष्ट होते हैं) च माम् रमन्ति (और मुझमें ही रमण करते हैं)

– ''जिनका मन मुझमें लगा है, जिनके प्राण मुझमें ही अर्पित हैं, जो आपस में मेरी ही चर्चा करते हुए ही सदैव सन्तुष्ट होते हैं और मुझमें ही रमण करते हैं।''

मेरे भक्त का चित्त मुझमें ही रम जाता है – मद्गतप्राणा। जैसे कोई माँ है। उसका बेटा दुर्घटना का शिकार हो गया है। वह कितना काम करती है। अस्पताल में रातों जागती है। फिर भी माँ को ऐसा नहीं लगता कि मैं अपने बच्चे के लिए बहुत काम कर रही हूँ। जो भावना उसमें बच्चे के लिए है, उसके कारण कर्म का बोझा उसे मालूम ही नहीं पड़ता। बल्कि ऐसा लगता है कि यह काम थोड़ा ही है और अधिक मैं कर लेती ! उसका सारा चित्त मानो अपने बेटे में ही लगा रहता है। यदि कोई बात करने भी आ गया, तो वहाँ भी वह अपने लड़के के सम्बन्ध में बात करेगी। क्योंकि उसका चित्त वहीं पर पड़ा है। उसके प्राण भी अपने बच्चे में ही पड़े हुए हैं। अगर कोई बातचीत हुई भी तो वह उस बच्चे के बारे में ही होगी। चर्चा उसी की रहेगी। प्रभु कहते

हैं कि अर्जुन, मेरे भक्त केवल मेरी ही बातचीत एवं चर्चा करते रहते हैं – बोधयन्त: परस्परम्। जैसा कि हमने इस लौकिक प्रेम के विषय में देखा।

ईश्वर-प्रेम से ईश्वर की सतत स्मृति

ठीक उसी प्रकार प्रभु के सम्बन्ध में भी भक्त किया करता है। ऐसी ही स्थिति हमारे जीवन में आती है, जब हमारा प्रेम भगवान से ही हो जाता है। भगवान यहाँ कह रहे हैं कि उसका चित्त मुझ में ही रम जाता है और उसके प्राण मेरे में ही अटके रहते हैं। ऐसा लगता है कि भगवान का विरह अगर थोड़ी देर के लिए हो जाए, जैसे श्रीरामकृष्ण के जीवन में हम देखते हैं। थोड़ी देर के लिए यदि काली माता का स्मरण मन में न हो, तो एकदम उनको ऐसी विकलता लगती थी कि न जाने माँ कहाँ मुझको छोड़कर चली गई ! यदि भक्तगणों से बातचीत भी कर रहें हैं, तो भी हरदम बोध यही रहता था कि माँ मेरे करीब हैं और मैं माँ के करीब हूँ। जैसे स्वामी रामतीर्थ पहाड़ों पर जा रहे थे। अचानक उन्हें ठोकर लगती है। तब वे कहते हैं – प्रियतम, इस समय मुझे तेरी विस्मृति हो गई, इसीलिए यह ठोकर लग गयी। यह बहुत पते की बात है। मानो भगवान की विस्मृति हुई, भगवान को हम भूले कि ठोकर लगी। भगवान में जब तक चित्त लगा है, तब तक ठोकर नहीं लगती।

भक्तों द्वारा भक्ति का रसास्वादन कैसे

ठीक यही स्थिति प्रभु यहाँ पर बतला रहे हैं कि ऐसे भक्त का चित्त, प्राण तो मेरे में ही रमते हैं और जब चर्चा भी कुछ होगी, तो वह मेरी ही होगी।

मैं जिस समय उत्तरकाशी में था, वहाँ दो महात्मा बड़े प्रसिद्ध थे। उनकी आपस में जब बैठक होती थी, भिक्षा लेने के लिए आते थे, तो उनसे उम्र में बड़े-बड़े साधुगण भी उन दोनों की बातचीत सुनने के लिए चुपचाप आकर बैठ जाते थे। उत्सुकता यह कि किस प्रकार बातें करते हैं। उनकी जितनी सारी बातें होती थीं, वह तत्त्व को लेकर, ज्ञान को लेकर होती थीं। कभी-कभी भक्ति की भी चर्चा करते थे। एक-दूसरे को अपना अनुभव बताते थे। आनन्द में मानो रमे हुए हैं। जैसे यदि दो पियक्कड़ आपस में मिल जाएँ, तो बड़ी बातें करते पाए जाते हैं। कभी कहते हैं कि ताँबे का पैसा लेकर ऐसे घिसना, तो फिर खूब चढ़ती है। नशा खूब चढ़ेगा और फिर कितना मजा आएगा! फिर परस्पर वे अपने नशे की चर्चा कर आनन्द मनाते हैं। गाँजे में चिलम भरो, तो उसमें फूँक कैसी मारनी चाहिए, इस पर बात करते हैं। एक-दो क्षेत्र के व्यक्ति मिल गये, तो सब उसी प्रकार की चर्चा करेंगे। कभी उनको ऐसा नहीं लगेगा कि वही बात हम सौ बार दुहरा चुके। यह बात ही मन में नहीं आएगी। उलटा ऐसा भास होगा कि अभी तो हमने पहली ही बार यह बात कही। अभी हमने कही ही कहाँ है? कोई दूसरा व्यक्ति यदि टोक दे कि क्या बार-बार व्यर्थ उन्हीं बातों को दुहराते हो, तो नाराज हो जाएँगे और कह भी देंगे कि कहाँ बार-बार कहते हैं। तात्पर्य यह है कि जिसकी जिसमें रुचि होती है, बारम्बार उस की चर्चा करने से उसके जीवन में रस मिलता है। मन में रसास्वादन होता है। रस की अनुभूति बारम्बार मानो उस रस को प्रगाढ़ बनाती जाती है। भगवान भी यही बात कहते हैं कि जो लोग मुझमें अपने प्राण और मन रख देते हैं, वे नित्य ही आपस में मेरी ही बात बोलते हैं। जब भी मिलेंगे नित्य मेरी ही चर्चा करेंगे। तुष्यन्ति च रमन्ति च – और उनका मुझमें ही सारा सन्तोष होता है। मुझमें ही प्रकट रूप से रम जाते हैं। ऐसा जिसको छोड़ने की इच्छा न हो, उसे कहते हैं – रमना। साधारण भाषा में हम कहेंगे कि क्या भई, तुम तो वहाँ जाकर रम ही गये। रमना अर्थात् चिपक गए। ऐसे ही जिनको भगवद् रस का थोड़ा-सा अनुभव हुआ। इसको समझने के लिए हमने लौकिक दृष्टान्त लिया। तो ऐसे जो लोग होते हैं अर्जुन, उनके लिए मैं व्यवस्था करता हूँ। क्या व्यवस्था करते हैं? यह तो हो गया साधक की ओर से कि साधक ने कोशिश की, साधक ने पुरुषार्थ किया। जो भक्त है, वह भगवान के पास जाने की कोशिश करता है। श्रीरामकृष्ण कहते थे कि भगवान कैसे हैं, जानते हो? भक्त एक कदम उनकी ओर जाए, तो भगवान दस कदम भक्त की ओर आते हैं। यह सम्बन्ध श्रीरामकृष्ण देव अपनी सहज सरल भाषा में बताते हैं। यहाँ भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से कह रहे हैं कि ऐसे भक्त के लिए मैं कैसी व्यवस्था करता हूँ।

बुद्धियोग किस प्रकार

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते।।१०।।

तेषाम् (उन) सततयुक्तानां (सततयुक्त) प्रीतिपूर्वकम् भजताम् (प्रेमपूर्वक भजनेवालों को) तम् बुद्धियोगं ददामि (वह बुद्धियोग देता हूँ) येन (जिससे) ते (वे) माम् (मुझे ही) उपयान्ति (प्राप्त होते हैं)।

– ''उन सततयुक्त प्रेमपूर्वक भजनेवालों को मैं वह बुद्धियोग देता हूँ, जिससे वे मुझे ही प्राप्त होते हैं।''

मैं जब देखता हूँ कि मुझे पाने के लिए भक्त इतना पुरुषार्थ कर रहे हैं, तो मैं क्या करता हूँ अर्जुन ! **सततयुक्तानां** – वे जो सतत युक्त हैं, अपने मन को जो निरन्तर मुझमें लगाने की कोशिश कर रहे हैं, जो प्रीतिपूर्वक मेरा भजन करते हैं। ऐसा नहीं कि अभी गुरुदेव ने साधना की पद्धति बताई, अब उनकी आज्ञा का पालन तो करना ही है। मन में प्रीति तो उमड़ नहीं रही है भगवान के लिए। फिर भी थोड़ी देर बैठकर हम जप कर लेते हैं, पर केवल कर्तव्य का भाव लेकर। इसमें कुछ गलत नहीं है। क्योंकि जैसे आयुर्वेद शास्त्र में आता है। यदि किसी को पित्त का प्रकोप हो, तो कहते हैं कि पित्त का प्रकोप होने से मुँह का स्वाद खराब हो जाता है। कोई भी चीज कड़वी लगने लग जाती है। मिश्री हम चखें, तो इतनी मीठी मिश्री भी कड़वी मालूम पड़ती है और उसे चूसने की इच्छा नहीं होती। पर वैद्यराज उपाय भी बताते हैं कि भई, मिश्री को तो तुम चूसते रहो, भले ही तुम्हें कड़वी मालूम हो। क्योंकि मिश्री के रस का पान करना ही पित्त के उपशम का कारण होता है। जिस समय चूसते-चूसते वही कड़वी मिश्री तुम्हें मीठी लगने लगे, तब समझ लेना कि अब पित्त का प्रकोप दूर हो रहा है। तुम्हारी बीमारी दूर हो रही है। तो ठीक इसी प्रकार पहले जब भगवान का भजन करने जाते हैं, तो सब अलोना लगने लगता है, कड़वा लगता है। गुरुदेव की आज्ञा का पालन करना ही है, तो जबरदस्ती बैठ गये। इसीलिए हम बैठते हैं। पर कहते हैं कि यह पहली स्थिति होगी। पर धीरे-धीरे एक ऐसी स्थिति आती है, जिसमें रस मिलता है। पर कभी-कभी ऐसी स्थिति आती है, जब कुछ कारण होते हैं, परिस्थितियाँ कुछ ऐसी आती हैं, जिनके कारण मनुष्य अपने मन को भगवान से अलग कर लेता है। पर जब भी मनुष्य ईमानदारी से मुझसे सतत युक्त होने की कोशिश करते हैं, उनको मैं बुद्धियोग देता हूँ, जिसके द्वारा वे मुझको प्राप्त करते हैं।

तो भगवान क्या कहते हैं? भक्त ने उनकी भक्ति की। उनकी भक्ति को देखकर भगवान द्रवित हो गये। द्रवित होकर भगवान क्या करते हैं? उन्हें बुद्धियोग प्रदान करते हैं? बुद्धियोग का अर्थ क्या है? इसमें बुद्धि भगवान से युक्त हो जाती है और बुद्धि में साधना के उच्चतर भाव उठने लग जाते हैं। भगवान ही मानो मार्गदर्शन करते हैं। एक ऐसी स्थिति हो जाती है, जब मन ही हमारा गुरु हो जाता है। जब भक्त श्रीरामकृष्ण देव से पूछते थे – महाराज ! जब कोई रास्ता बतानेवाला न हो, तब क्या करें, आगे बढ़ें? किसके पास जाएँ? श्रीरामकृष्ण कहते थे, देखो, जब तुम लोगों के जीवन में ऐसी भक्ति आ जाएगी कि भगवान की बातों को छोड़ करके बाकी सबकुछ रसहीन मालूम होने लगेगा, उस स्थिति में तुम्हारा मन ही गुरु बन जाएगा। मन ही प्रेरणा देने लगेगा कि इस तरह से करो इत्यादि। हम साधना कर रहे हैं और साधना की उच्चतर अवस्था में पहुँच रहे हैं। हमारा मन किसी गहरे ध्यान में डूब रहा है। उस समय कुछ बाधाएँ उपस्थित होती हैं, तो मन के भीतर से प्रेरणा मिलती है कि अच्छा जरा ऐसा तो करो। इस प्रकार से साधना करो। यह मन ही हमें संकेत देता है, हमारा मार्गदर्शन करता है। यही भगवान की भाषा में है – ददामि बुद्धियोगं तं – वह मानो भगवान का दिया हुआ बुद्धियोग है। येन मामुपयान्ति ते – जिसके द्वारा मुझे प्राप्त करने में समर्थ होता है। मानो भगवान ही उसे रास्ता बता दे रहे हैं। मन को उस ढंग से प्रेरित करते हैं। **(क्रमशः)**

पृष्ठ ३६१ का शेष भाग

शुद्धान्तःकरण सत्पुरुषों के जानने योग्य कल्याणकारी एवम् तापत्रयनाशकारी यथार्थ वस्तु का वर्णन है। जैसे ही पुण्यात्मा पुरुष इसके श्रवण की इच्छा करते हैं, वैसे ही परमेश्वर भगवान् उनके हृदय में अवरुद्ध हो जाते हैं।

यह भागवत पुराणों का तिलक तथा भगत्प्रेमियों का धन है। इसमें परमहंसों के प्राप्य विशुद्ध ज्ञान का ही वर्णन है तथा ज्ञान, वैराग्य और भक्ति के सहित निवृत्ति मार्ग को प्रकाशित किया गया है। जो पुरुष भावपूर्वक इसके श्रवण, पठन और मनन में तत्पर रहता है, वह सांसारिकता से मुक्त हो जाता है।

यह रस दुर्लभ है, इसलिए, भाग्यवान श्रोताओ ! आप इसका छक कर पान करें, इसे कभी न छोड़ें, कभी न छोड़ें (श्रीपद्मपुराण उत्तरखण्ड अध्याय ६ श्लोक ८३)।

जिन बड़भगियों ने प्रतिदिन श्रीमद्भागवतशास्त्र का सेवन किया है, उन्होंने अपने पिता, माता और पत्नी तीनों के ही कुल का भलीभाँति उद्धार कर दिया (श्रीस्कन्दपुराण वैष्णव खण्ड अध्याय ३/१५)। ○○○

कोरोना में राजसूय यज्ञ

स्वामी दाशरथानन्द, रामकृष्ण मिशन, मैसूर

महाभारत में एक कहानी है कि धर्मराज युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ किया। यह राजसूय यज्ञ अपनेआप में एक अद्‌भुत यज्ञ था और ऐसा कहा जाने लगा कि यह संसार में अब तक का सबसे विराट यज्ञ है। इस यज्ञ में बहुत सारी सामग्रियाँ दान में दी गयी थीं। उसी समय आधा स्वर्ण शरीरवाला एक नेवला वहाँ पर आया और जहाँ पर यज्ञ सम्पन्न हुआ था, उस स्थान पर लोटने लगा। लोटने के उपरान्त उसने कहा कि यह सबसे विराट यज्ञ नहीं है, क्योंकि मेरे शरीर का बचा हुआ अंग स्वर्ण का नहीं हुआ। वहाँ उपस्थित सभी लोगों की जिज्ञासा हुई कि एक नेवला ऐसा क्यों कह रहा है, जबकि यहाँ पर उपस्थित राजा-महाराजा, ब्राह्मण तथा गणमान्य व्यक्ति सभी ने कहा कि यह अब तक का सबसे विराट यज्ञ है।

नेवला से उनलोगों ने पूछा कि तुम ऐसा कैसे कह सकते हो कि यह अब तक का विराट यज्ञ नहीं है?

नेवला ने कहा कि मेरे साथ एक घटना घटित हुई थी, जिसे मैं आप सबको सुनाता हूँ। बहुत पुरानी बात है। एक ब्राह्मण परिवार रहता था। वे लोग कई दिनों से भूखे थे। कई दिनों के उपरान्त उन्हें कहीं से भोजन प्राप्त हुआ। जब वे लोग भोजन करने के लिए बैठे थे, उसी समय एक अतिथि उनके द्वार पर भिक्षा के लिए आया। अतिथि के द्वार पर भिक्षा माँगने पर ब्राह्मण ने अपने भोजन का अंश उसे दे दिया। तत्पश्चात् थोड़ा-सा भोजन करने के बाद अतिथि की भूख और अधिक बढ़ गयी और धीरे-धीरे उसके पूरे परिवार ने अपने-अपने अंश का भोजन उस अतिथि को दे दिया। भोजन के उपरान्त सन्तुष्ट होकर अतिथि ने उन्हें पूरे हृदय से आशीर्वाद दिया और चला गया। 'अतिथिदेवो भव' अर्थात् अतिथि को भगवान मानकर उनकी पूजा करना सबसे बड़ी पूजा मानी जाती है। बहुत दिनों से भूखा ब्राह्मण परिवार भूख के कारण काल के गाल में समा गया।

अतिथि जब भोजन कर रहा था, तब उसके भोजन का कुछ अंश वहाँ जमीन पर गिर गया था। गिरे हुए भोजन पर मैं लोट गया और मेरा आधा शरीर स्वर्ण का हो गया। लेकिन वहाँ पर और अन्न का अंश नहीं था, जिससे मैं अपने शरीर का आधा भाग स्वर्ण का कर सकूँ। तभी से मैं अपने शरीर के बचे हुए अंग को स्वर्ण का करने के लिए जहाँ भी यज्ञ होता है, वहाँ पर जाता हूँ और उस यज्ञस्थल के आस-पास लोटता हूँ, जिससे कि मेरा शरीर स्वर्ण का हो जाये। किन्तु दुख की बात है कि किसी भी यज्ञ से मेरा शरीर स्वर्ण का नहीं हुआ।

आज यहाँ पर विराट राजसूय यज्ञ हो रहा है, ऐसा सुनकर मैं यहाँ आया और यज्ञस्थल पर लोटने लगा। दुर्भाग्य से यहाँ पर भी मेरा शरीर स्वर्ण का नहीं हुआ। इसीलिए मैंने कहा कि यह सबसे विराट यज्ञ नहीं है। विराट यज्ञ तो उस ब्राह्मण के घर में हुआ था, जहाँ लोटने से मेरा शरीर स्वर्ण का हो गया था।

उस ब्राह्मण परिवार के अद्‌भुत त्याग की तरह आज के इस कलियुग में भी इस प्रकार की घटना घटित होती रहती है। उसका एक उदाहरण यहाँ पर प्रस्तुत है, जो रामकृष्ण मठ और मिशन के एक आश्रम के भक्त से सम्बन्धित है। वे आश्रम के पुराने भक्त हैं, जो आश्रम से २५ वर्षों से जुड़े हुए हैं, उनके साथ यह सत्य घटना घटीं, जिसका वर्णन उन्हीं के शब्दों में लिपिबद्ध है :

''मैं नुगंमबाक्कम्, चेन्नई, तमिलनाडु के एक अपार्टमेन्ट में रहता हूँ। हमारी गली के अन्त में एक विद्यालय है। विद्यालय के मुख्य द्वार के पास एक ऑटो स्टैण्ड है। आटो-चालक विद्यार्थियों को घर से विद्यालय और विद्यालय से घर छोड़ने का कार्य करते हैं। इसके साथ ही वे आम जनता तथा हमारे अपार्टमेन्ट में रहनेवालों के लिए भी यातायात के साधन हैं। वाहनचालकों के जीविकोपार्जन का यही मुख्य साधन है।

''नागलिंगम् नामक एक ऑटोचालक मुझे तथा अपार्टमेन्ट में रहनेवाले अन्य निवासियों की बहुत सहायता करता है। जब भी हम उसे बुलाते, वह हमारी सहायता के लिए अपनी गाड़ी लेकर उपस्थित हो जाता।

''कोविड-१९ विश्वव्यापी महामारी फैलने के उपरान्त

लगायी गयी देशव्यापी लॉकडॉउन के कारण चालकों ने अपनी आजीविका खो दी। वे बेरोजगार हो गये, क्योंकि मन्दिर, विद्यालय, बाजार, शॉपिंगमॉल, यातायात सभी बन्द हो गये थे।

''लॉकडॉउन के दिनों में एक दिन मेरे मन में विचार आया कि नागलिंगम् के पास तो अभी कोई कार्य नहीं है, तब वह अपने परिवार का भरण-पोषण कैसे कर रहा होगा? इन्हीं सब बातों को लेकर मेरे मन में उसके लिए चिन्ता होने लगी। नागलिंगम् का फोन नम्बर मेरे पास था। मैंने उस नम्बर पर फोन करके उससे सम्पर्क करने का प्रयास किया। किन्तु उसका फोन लगाने पर उधर से सन्देश आया कि आप जिस ग्राहक से सम्पर्क करना चाहते हैं, वह नम्बर अभी उपयोग में नहीं है, उनका फोन बन्द है। मैंने सोचा सम्भवत: उसके पास रिचार्ज करने के पैसे नहीं होंगे।

''किसी तरह मैंने नागलिंगम् की बेटी से सम्पर्क किया। उसकी बेटी ने मुझे अपने घर का पूरा हाल बताया। मैंने उसकी बेटी से उसके बैंक खाते का विवरण लिया और उसके खाते में दस हजार रुपये जमा कर दिये।

''रुपये प्राप्त होने के उपरान्त नागलिंगम् ने मुझे फोन करके सहायता के लिए धन्यवाद कहा। फोन रखने से पहले उसने कहा 'सर, आपसे मेरा एक निवेदन है।'

''उसकी बातें सुनकर मुझे लगा कि उसे और कुछ रुपये की आवश्यकता होगी।

''उसने कहा ''सर, मेरे जैसे यहाँ पर और नौ आटोचालक हैं, जिनकी आर्थिक अवस्था बहुत ही दयनीय है। यदि आप अनुमति दें, तो मैं दस हजार रुपये में से एक-एक हजार रुपये उन नौ ऑटोचालकों को दे दूँ और बाकी बचा एक हजार रुपया मैं अपने लिए रख लूँ।''

''उसकी यह बातें सुनकर मैं स्तब्ध हो गया। धन्य है तू नागलिंगम् ! जो इस विपरीत परिस्थिति में भी अपने लिए न सोचकर दूसरों के लिए सोच रहा है। अपनी अच्छी आर्थिक अवस्था में तो कोई भी दूसरों की सहायता करता है, किन्तु इस विकट परिस्थिति में अपने लिए न सोचकर दूसरों हेतु सोचना बहुत विरले घटना है। क्योंकि लॉकडाउन कितने दिनों के उपरान्त खूलने वाला है या मनुष्य की दिनचर्या कितने दिनों के बाद सामान्य होने वाली है, यह किसी को मालूम नहीं है। फिर भी नागलिंगम् इन परिस्थितियों में भी नि:स्वार्थ है। यह उसके उदार, नि:स्वार्थ व्यक्तित्व को दर्शाता है।

''उसकी इन बातों से मैं बहुत प्रभावित हुआ। मैंने उससे कहा जैसी तुम्हारी इच्छा, वैसे करो। यह कहकर मैंने उसे आशीर्वाद देते हुए फोन रख दिया।''

दानदाता द्वारा दिया गया दान उसकी रकम या सामग्री पर निर्भर नहीं करता, बल्कि उसके द्वारा दिये गये दान के पीछे उसकी भावना से वह दान कितना महान होता है, इसको दर्शाता है। ○○○

पृष्ठ ३५६ का शेष भाग

विद्यालय में बंगला भाषा का अध्ययन आवश्यक था। छह माही परीक्षा में 'गाय' पर निबन्ध में सुभाष ने बीस पंक्तियाँ लिखीं। उसमें लगभग बीस गलतियाँ निकली। अध्यापक ने कक्षा में उस निबन्ध को सबके सामने पढ़ा, सभी विद्यार्थी खूब हँसने लगे। उसके बाद उसने बंगला विषय का अध्ययन पूरी मेहनत एवं लगन से करने का दृढ़ निश्चय किया और वार्षिक परीक्षा में उसने सर्वाधिक अंक अर्जित किए। अध्यापक ने उसकी खूब सराहना की।

सुभाषचन्द्र बोस में देशप्रेम की दिव्य ज्योत प्रज्वलित हो रही थी। उन्होंने आई.सी.एस. की परीक्षा केवल सात माह के अध्ययन से ही उत्तीर्ण की। परन्तु स्वतन्त्रता सेनानी बनने हेतु आई.सी.एस. का त्याग कर दिया। उन्होंने एक पत्र में अपने भाई को लिखा – 'क्रूर, निर्दयी, अन्यायी, जलियावाला बाग के कांड के पापियों का साथ देना मेरे लिए असम्भव है। माँ की पुकार दिन-रात मेरे कानों में गूँज उठती है – ''धाओ, धाओ समरक्षेत्रे''– रणभूमि में दौड़ो, दौड़ो। पराधीन देश का कर्तव्य है कि वह स्वतन्त्रता-प्राप्ति के लिए निरन्तर संघर्ष करता रहे। उन्होंने स्वतन्त्रता संग्राम में भाग लिया और २७ फरवरी, १९४२ को आजाद हिन्द फौज की स्थापना की।

सुभाषचन्द्र बोस ने भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में अन्त तक संर्घष करते हुए १८ अगस्त, १९४५ को अपने प्राण मातृभूमि के लिए न्योछावर कर दिए। सुभाषचन्द्र बोस त्याग, बलिदान, शौर्य, धैर्य, कुशल नेतृत्व जैसे उच्च गुणों से ओतप्रोत थे। भारत माता के इस महान वीर अमर सपूत को शत-शत नमन ! ○○○

भगवान को क्या दें?

स्वामी सत्यरूपानन्द

सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर

भगवान को हम सबसे बड़ी चीज दे सकते हैं, वह है मन। भगवान तो हमारा मन देखते हैं। भगवान संसार के स्वामी हैं। वे तो वैभवशाली हैं, उन्हें हम क्या दे सकते हैं? लेकिन यदि हम कुछ दे सकते हैं, तो वह है हमारा हृदय, मन, प्रेम और भक्ति। अपना मन-प्राण सब कुछ ठाकुर को अर्पण करना चाहिए। भगवान मन चाहते हैं, सोना-चाँदी नहीं। चार मिनट पूजा करें, पर देखें हमारा मन उनके चरणों में समर्पित है या नहीं। ठाकुरजी को अपना पूर्ण जीवन समर्पित कर दो। हमारी श्वास-श्वास भी भगवान की पूजा के लिए है। यह महामंत्र मन में रखो – प्रभु मैं नहीं, तू ही तू है। भगवान से भगवान को ही माँगो। भगवान तुम जानो मैं क्या करूँ? दूसरों से अपना कष्ट नहीं कहना चाहिए। अपना कष्ट भगवान से ही, अपने इष्ट से ही कहना चाहिए। बिना भगवान के हमारा कष्ट कोई दूर नहीं कर सकता। प्रतिदिन-प्रतिक्षण समर्पण का भाव रखना चाहिए। भगवान हमसे दूसरा कुछ भी नहीं चाहते, वे केवल हमारा मन चाहते हैं। भगवान के अनन्त रूप हैं। भगवान से कहना चाहिए – प्रभु तुमको छोड़ सब जगह मेरा मन लग रहा है। मेरा मन अपने चरणों पर लगा दो। हमें जीवन के प्रत्येक कार्य में भगवान को जोड़ना चाहिए। यदि आप डॉक्टर हो, तो भगवान से बोलना चाहिए, भगवान रोगी को आपने भेजा है, मैं सर्जरी कर रहा हूँ, आप इसे ठीक कर दो। मेरा ज्ञान मैंने लगाया है, अभी आप अपनी कृपा दृष्टि इस पर डालो। ऐसी प्रार्थना भगवान से करनी चाहिए। प्रार्थना कब तक करें? हम जितने दिन तक जियेंगे, हमें उतने दिन तक भगवान से प्रार्थना करनी है।

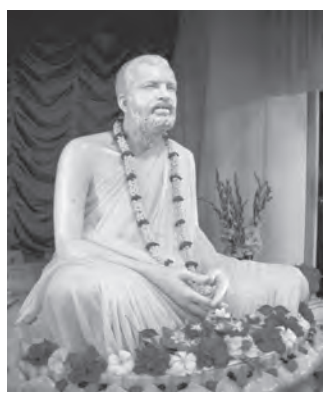

हम साधारण मनुष्य हैं। जब हमारा मन खराब हो जाता है, तो हम हजारों कोशिश करें, पर मन ठीक नहीं होता। इसके लिए भगवान से प्रार्थना करनी चाहिए। हमारे मन को भगवान के सिवाय कोई नहीं ठीक कर सकता। जो कुछ होगा, वह भगवान की कृपा से ही होगा। हम साधना कर रहे हैं, यदि उसका अहंकार आया, तो हम गड्ढे में गिर जायेंगे। इसलिए हम जो कर रहे हैं, वह भगवान ही करा रहे हैं। मैं कुछ नहीं कर सकता। भगवान से उनकी कृपा के लिए प्रार्थना करनी चाहिए। अगर भगवान की कृपा हुई, तो सब नियम बदल जाते हैं।

भगवान की कृपा, उन में समर्पण से आती है। इसके लिए भगवान के ऊपर दृढ़ विश्वास चाहिए। हमारा मन भगवान में एकाग्र हो इसके लिए भगवान से प्रार्थना करनी है। अपने जीवन के सुख-सविधा के लिये भगवान पर विश्वास रखें। जैसे छोटा बच्चा माँ को बताता है, हमें भी भगवान को सब बताना चाहिए। हे भगवान ! जिससे जगत का कल्याण हो, ऐसा करो। ऐसी प्रार्थना से हमारा भी कल्याण होगा। हमारी प्रार्थना वनवे ट्रैफिक की तरह होनी चाहिए। हमारी आन्तरिक प्रार्थना जल्दी सफल होती है। भगवान से भगवान को ही माँगो। तुम्हें सुख ही सुख मिलेगा। अगर तुम संसार माँगोगे, तो सुख और दुख दोनों मिलेंगे। भगवान से उनकी कृपा माँगनी चाहिए। प्रभु तुम्हारी जैसी इच्छा है, जैसा तुमने रखा है, उसको मैं स्वीकार कर सकूँ, यह विनती करनी चाहिए। अपने कपट, सारी कमजोरियाँ भगवान के पास खोलकर बतावें, वे सुनते है। हमें मनुष्य का शरीर मिला है, तो मानवीय दुर्बलताएँ तो रहेंगी ही। उनसे बचने की प्रार्थना भगवान से करें। एक बार ठाकुर के शरण में आये हैं, तो हमारा अकल्याण नहीं होगा, हमारा कल्याण ही होगा। भगवान भाव ग्रहण करते हैं। कोई प्रशंसा करे, कोई गाली दे, तो सब सह लेना और प्रभु से प्रार्थना करना कि हे प्रभु मुझे सहने की शक्ति दो और जिसने मुझे गाली दी, उसका भी कल्याण करो। ○○○

साधुओं के पावन प्रसंग (३२)

स्वामी ईशानानन्द

स्वामी चेतनानन्द

(स्वामी चेतनानन्द जी महाराज से रामकृष्ण संघ के भक्त भलीभाँति परिचित हैं। वर्तमान में महाराज वेदान्त सोसायटी, सेंट लुइस के मिनिस्टर-इन-चार्ज हैं। उन्होंने श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द और वेदान्त पर अनेक पुस्तकें लिखी और अनुवाद की हैं। प्रस्तुत पुस्तक में रामकृष्ण संघ के महान त्यागी संन्यासियों के संस्मरण हैं, जिनके सम्पर्क में लेखक स्वयं आए थे। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु मूल बंगला से इसका हिन्दी अनुवाद धारावाहिक रूप से दिया जा रहा है। – सं.)

स्वामी ईशानानन्द जी (वरदा महाराज १८९८-१९७४) का बहुत सम्भव है कि १९५३-१९५४ ई. में मैंने श्रीमाँ के जन्मशताब्दी के समय दर्शन किया था। मैं उस समय मायेर बाड़ी, उद्बोधन में स्वयंसेवक था। शरीर पर एक पतला चादर, गले में रूद्राक्ष-माला मायेर बाड़ी, उद्बोधन में एक बालक जैसा संन्यासी आना-जाना कर रहे हैं। ये बहुत भाग्यवान साधु थे। ग्यारह वर्ष की आयु में श्रीमाँ के पास आये थे, दीक्षा प्राप्त की थी और अगले ग्यारह वर्ष तक अर्थात् श्रीमाँ के देहत्याग तक सेवक के रूप में उनके साथ थे। वे बहुत सरल, सीधे-साधे संन्यासी थे।

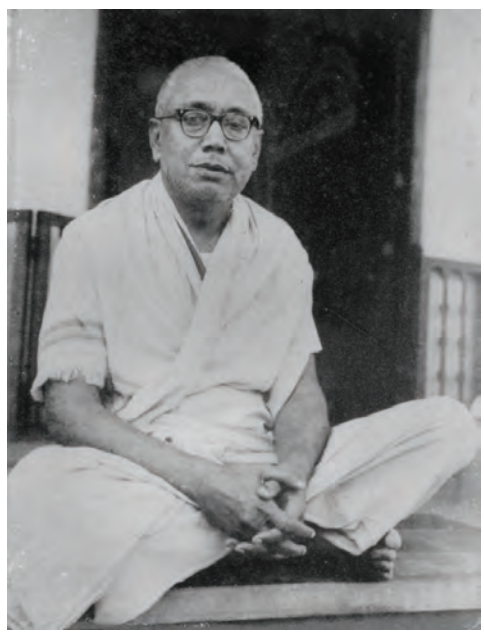

स्वामी ईशानानन्द जी महाराज

१९६१-६२ ई. में अद्वैत आश्रम, एण्टाली, कोलकाता में वे आये थे। एक रविवार को सन्ध्या के समय उन्होंने 'श्रीमाँ के प्रसंग' में बताया। उस समय मैं ब्रह्मचारी था, व्याख्यान के sound system (ध्वनि प्रणाली) को देखने का दायित्व मेरा था। उस समय व्याख्यान रिकॉर्ड नहीं होता था, केवल loud speaker (ध्वनि विस्तारक) था। महाराज कभी आँखें खोलकर, तो कभी आँखें बन्दकर हू-ब-हू बाँकुड़ा की भाषा में ही माँ की बातें सुना रहे थे। लोग मुग्ध होकर प्रत्यक्षदर्शी जैसा सब विवरण सुन रहे थे। श्रीमाँ अपनी बोलचाल में बाँकुड़ा जिले के जो शब्द व्यवहार करती थीं, महाराज भी उन शब्दों का उसी प्रकार उच्चारण कर रहे थे, इससे ऐसा लग रहा था कि जैसे श्रीमाँ स्वयं ही बोल रही हैं।

१९६८ ई. में उनका 'मातृसान्निध्य' पुस्तक छपने के समय अद्वैत आश्रम में वे हमारे साथ कई दिनों तक थे। उन्हीं दिनों उनके साथ घनिष्ठ सम्पर्क में आने का मुझे सुयोग मिला था। उनके पास दो चीजें रहती थीं : श्रीमाँ का एक फोटो एलबम और श्रीमाँ का एक चरणचिन्ह, जो चिप्बॉर्ड पर पिन लगाया हुआ तथा लाल वस्त्र से ढँका हुआ था। उन दिनों मैं अद्वैत आश्रम के फोटो विभाग में सेवारत्त था। पहले एलबम का इतिहास कहता हूँ। उसमें श्रीमाँ के अधिकांश चित्र, हाथ का छाप, चरण-चिन्ह कुल मिलाकर ३६ चित्र थे। बहुत सम्भव है कि यह एलबम ब्रह्मचारी गणेन ने तैयार किया हो, क्योंकि उन्होंने ही श्रीमाँ का अधिकांश चित्र लिया था। यह एलबम अभी बेलूड़ मठ की लाईब्रेरी में है। १९८८ ई. में स्वामी हिरण्मयानन्द जी महाराज, उस समय वे संघ के महासचिव थे, उसे लेकर अमेरिका आये थे। मैंने दिनांक १२/०६/१९८८ को इसका जेरॉक्स करके सेंट लुईस में रख दिया है। क्योंकि इसमें बहुत इतिहास है।

१९६८ ई. में वरदा महाराज ने श्रीमाँ का सभी जगह पूजित (shrine pose) मूल चित्र मुझे दिखाया, जो निवेदिता के पास था। मैंने उनको वह चित्र अद्वैत आश्रम में देने के लिए कहा। वे पहले सहमत नहीं हुए। अन्त में कहा, ''यदि तुम्हारा प्रेसिडेन्ट गारन्टी देगा, तभी दूँगा।'' स्वामी बुधानन्द जी महाराज उस समय अद्वैत आश्रम के प्रेसिडेन्ट

थे। जब मैंने उनको यह सब बताई, तो उन्होंने मूल चित्र के संरक्षण का महाराज को वचन दिया। मैं उस मूल चित्र से कई निगेटिव निकालकर रखा हूँ और बाद में इस देश (अमेरिका) में ले आया हूँ। उस मूल चित्र की प्रति विक्रय की जाती है।

मैंने भारत में रहते समय एक और कार्य किया था। १९६९-७० ई. में मैंने देखा कि श्रीमाँ के शिष्यगण एक-एक करके चले जा रहे हैं। इन लोगों के चले जाने पर कई प्रत्यक्षदर्शी इतिहास विलुप्त हो जायेंगे। उस समय वाराणसी में श्रीमाँ के कई शिष्य थे – जैसे वरदा महाराज, वैकुण्ठ महाराज, धरणी महाराज, अपूर्वानन्द जी महाराज आदि। मैंने अद्वैत आश्रम से श्रीमाँ का ३५ छोटा-छोटा चित्र वरदा महाराज को भेजा। उन्होंने उन सब चित्रों के पीछे संख्या देकर तथा छोटे-छोटे कागज पर वह संख्या लिखकर प्रत्येक चित्र का इतिहास – कहाँ लिया गया, कब लिया गया, समूह चित्र में व्यक्ति का परिचय, यह सब लिखकर मुझे भेजा। उन सब चित्रों और वरदा महाराज के नोट पर निर्भर होकर हमलोगों ने एक एलबम तैयार किया है। वह रामकृष्ण मिशन की सम्पत्ति हो गया है। वरदा महाराज के हाथों द्वारा लिखे गये नोट के साथ वे सभी चित्र अभी भी मेरे पास हैं।

अभी श्रीमाँ के चरणचिन्ह की बातें कहता हूँ। १९१९ ई. में कोयालपाड़ा में श्रीमाँ ने वरदा महाराज के द्वारा कोतूलपुर से कपड़ा और आलता खरीदवाकर ३२ चरण-चिन्ह दिए। ये सभी उनके जीवित अवस्था में लिये गये अन्तिम चरण-चिन्ह थे। श्रीमाँ ने स्वयं वरदा महाराज को एक दिया था और वही चिप्बॉर्ड पर पिन लगाया हुआ तथा लाल वस्त्र से ढँका हुआ लेकर वरदा महाराज सभी जगह जाते थे। वरदा महाराज का वाराणसी के अद्वैत आश्रम में १९७४ ई. में शरीर त्याग हुआ। १९८६ ई. में मैं भारत आया और रजनी महाराज के पास उस चरणचिन्ह को देखा। मेरे द्वारा हार्दिक प्रार्थना करने पर उन्होंने मुझे वह दे दिया। मैंने उस जीर्ण चित्र के पीछे एसिड मुक्त कपड़ा लगाकर उसे संरक्षित करके सेंट लुइस के ठाकुर-मन्दिर के ठाकुर वेदी के नीचे रख दिया है।

हमलोग पुन: वरदा महाराज की बातों की ओर चलते हैं। १९६८ ई. में 'मातृसान्निध्य' पुस्तक प्रकाशित करने के समय वे अद्वैत आश्रम में माँ के चित्रों के लिए आये। उन्होंने तीन चित्रों का चयन किया। पहला चित्र, उद्बोधन में श्रीमाँ ध्यानरत्त हैं। इस चित्र के विषय में वरदा महाराज ने कहा, ''एक दिन श्रीमाँ उद्बोधन के ठाकुर मन्दिर में ध्यान कर रही थीं। उस समय गणेन महाराज ने उनको तिपाई पर बैठाकर कैमरा से वह चित्र खींचा था। तिपाई की आवाज से श्रीमाँ ने आँखें खोलीं, तब गणेन महाराज ने कहा, 'माँ, आपका एक चित्र ले रहा हूँ।' श्रीमाँ की आँखें खुली हुई थीं, उसी अवस्था में उन्होंने एक और चित्र खींच लिया।''

दूसरा चित्र – पीछे धान की बोरी, श्रीमाँ चरण झूलाकर बैठी हुई हैं। इस चित्र के विषय में वरदा महाराज ने कहा था – 'माँ अन्नपूर्णा।' इतने दिनों तक लोगों की धारणा थी कि यह चित्र श्रीमाँ के पुराने घर में लिया गया था। १९८६ ई. में जयरामवाटी में प्रभास महाराज ने मुझे बताया कि यह चित्र सतीश विश्वास के घर पर खींचा गया था। उन्होंने कहा, ''राममय महाराज ने उनको और अब्जजानन्दजी को कहा था कि वे (राममय महाराज) उस समय वहाँ पर उपस्थित थे।'' जो भी हो, स्वामी सारदेशानन्द जी की स्मृतिकथा में है कि श्रीमाँ बाँकू को देखने के लिए सतीश विश्वास के घर गयी थीं। उनकी स्त्री ने श्रीमाँ के लिए मिट्टी के बरामदे में एक दरी बिछा दी। उनके वर्णनानुसार : ''पूर्वमुखी होकर बरामदा के किनारे बैठी हुई हैं, नीचे चरण झूल रहे हैं। गोद में दोनों हाथ, लाल परिधान, सिर पर शुभ्रवस्त्र, अल्प घूँघट, प्रसन्न मुख-मण्डल, हल्के घूँघराले केश शरीर के दायें वक्षस्थल से नीचे की ओर झूल रहे हैं। माँ इस प्रकार बैठी हुई हैं कि देखने से ऐसा लगता है, जैसे माँ-लक्ष्मी स्वयं भाग्यवान गृहस्थ के द्वार पर बैठी हुई हैं, पास में ही धान से परिपूर्ण मड़ई (भण्डार) शोभा विस्तार करके उनके शुभागमन की संकेत दे रहा है।'' (श्रीश्रीमायेर स्मृतिकथा, पृ १०५)।

वरदा महाराज ने तीसरे चित्र के विषय में बताया, ''गणेन महाराज ने श्रीमाँ का बैठा हुआ एक चित्र लिया, जिसमें श्रीमाँ का दायाँ घुटना थोड़ा-सा लम्बा और बायाँ घुटना थोड़ा-सा छोटा दिखायी दे रहा है। शरत महाराज ने उसे देखकर गणेन महाराज से कहा, 'तुमने श्रीमाँ का यह कैसा चित्र लिया है? तुम मेरे लिए श्रीमाँ के मुख का एक चित्र खींच दो।' यह वही चित्र है।'' उस चित्र के प्रसंग में वरदा महाराज ने कहा था, ''देखो, श्रीमाँ कौशाम्बी थीं।'' तत्पश्चात् कौशाम्बी देवी की व्याख्या करते हुए उन्होंने कहा, ''जो विवाहिता स्त्रियों में अखण्ड शुद्धता (unbroken chastity) पायी जाती है, उसे ही शास्त्रों में कौशाम्बी कहा गया है। दुर्गासप्तशती में कौशाम्बी का उल्लेख है।''

अद्वैत आश्रम में रहते समय एक दिन वरदा महाराज से मैंने पूछा, ''महाराज, आप श्रीमाँ के साथ प्राय: ग्यारह वर्ष थे। आप बताइये तो, जैसे हमारे घर में माँ, बहन, मौसी, फूआ, मामी आदि नारियाँ हैं, उनके साथ श्रीमाँ की पृथकता कहाँ पर है?'' वरदा महाराज ने थोड़ा-सा चुप होकर कहा, 'तुमने क्या ऐसा कोई मनुष्य देखा है, जो सम्पूर्ण रूप से वासनाशून्य हो? श्रीमाँ सम्पूर्ण वासनाशून्य थीं। देखो, मनुष्य किसी-न-किसी वासना के अधीन है। एकमात्र भगवान ही वासनामुक्त हैं। श्रीमाँ स्वयं देवी भगवती थीं।''

अन्यान्य नारियों के साथ श्रीमाँ की पृथकता के प्रसंग में स्वामी विशुद्धानन्द जी की एक बात स्मरण हो रही है। उनका (स्वामी विशुद्धानन्द) कई बार दर्शन किया हूँ, उनको प्रणाम किया हूँ, किन्तु बातें करने का सुयोग नहीं हुआ। वे कहा करते थे, ''श्रीमाँ को मैंने स्वयं एक नाम दिया है – 'गंड़ीभांगा माँ' – असीमित माँ। अन्य जितनी माताओं को देखता हूँ, उन सबकी कोई-न-कोई सीमा है। उनका स्नेह केवल अपनी सन्तानों तक ही आबद्ध है। किन्तु ये जो माँ हैं, वे जगत की माँ हैं।''

वरदा महाराज के मुँह से एक मजेदार कहानी सुनी थी। स्वामी देवानन्द जी पचास के दशक के अन्तिम समय में बलराम मन्दिर की देखभाल करते थे और प्रति शनिवार व्याख्यान की व्यवस्था करते थे। प्रसिद्ध साहित्यिक अचिन्त्य कुमार सेनगुप्त प्रति शनिवार वहाँ पर धारावाहिक रूप से 'परमा प्रकृति सारदामणि' के ऊपर व्याख्यान देते थे। अचिन्त्य बाबू ने श्रीमाँ पर 'परमा प्रकृति श्रीश्रीसारदामणि' नामक एक जीवन-ग्रन्थ लिखा था। उस ग्रन्थ में वे उल्लेख करते हुए लिखते है : ''वरदा नाम की एक अल्पवयस्क विधवा श्रीमाँ के साथ जयरामवाटी गयी थीं।'' बाद में एक दिन अचिन्त्य बाबू के व्याख्यान के पश्चात् वरदा महाराज ने उनके चादर से अपना मुख, घूँघट जैसा ढँककर अचिन्त्य बाबू से कहा, ''अचिन्त्य बाबू, मैं ही वह अल्पवयस्क विधवा वरदा हूँ।'' अचिन्त्य बाबू ने विस्मित होकर क्षमा माँगी।

वरदा महाराज ने श्रीमाँ से कितना स्नेह-प्रेम पाया था, उसे भाषा में वर्णन नहीं किया जा सकता। उसे मापने की मेरी क्षमता नहीं है। स्नेह-प्रेम प्राण की वस्तु है, उसे भाषा या मुँह से व्यक्त नहीं किया जा सकता, केवल अनुभव किया जा सकता है। श्रीमाँ का स्नेह-प्रेम पाने का सौभाग्य जिनको भी हुआ है, उन्होंने अपने अन्दर हृदय में ही उसे अनुभव किया है। माता-पिता का स्नेह-प्रेम उसके सामने म्लान हो जाता है। **(क्रमश:)**

पृष्ठ ३६३ का शेष भाग

पर ठाकुर की पीठ पर थप्पड़ की चोट का अनुभव, ये सब क्रान्तिकारी उदाहरण हैं। एक बात मैंने कहाँ पढ़ी है, याद नहीं है, किन्तु वह बात सटीक है। केशव बाबू उस समय ठाकुर के पास थे, जब वे कहीं पौधों को काट-छाँट रहे थे, तब ठाकुर ने छाती में खूब कष्ट का अनुभव किया था।

मुझे और जीना पड़ेगा, इससे कष्ट हो रहा है।

सेवक – ऐसी बात है क्या ! मुझे सुनकर हँसी आ रही है कि आपको किस बात का कष्ट है ! आपने अपने मन को तो खूब जतन से सँभालकर रखा है। देखता हूँ, आप तो मजे में हैं।

महाराज ने हँस दिया।

महाराज – शास्त्रों ने जो कहा है कि कलियुग में धर्माचरण नहीं हो पाता, इसकी व्याख्या कर सकता हूँ। देखो न, पहले के युगों में शरीर को व्यायाम के द्वारा कैसा सबल बनाया गया था। लोग लौह-कवच पहनते, उस पर धनुष-बाण लेकर युद्ध करते, शरीर से रक्त गिरता, तब किसी तरह युद्ध बन्द करते थे। उसी शरीर में मानसिक शक्ति होना विचित्र नहीं है। हमलोगों को देखो न, मैं ही तो ज्वलन्त प्रमाण हूँ। सब कुछ था, किन्तु शरीर ठीक नहीं रहने से मेरा जीवन खिल नहीं सका। तुम्ही देखो न, बलिष्ठ शरीर के अभाव में तुम्हें कितनी असुविधा होती है ! निश्चय ही यदि काम-संस्कार न रहे, तो कुछ लोग सहज ही ब्रह्मचारी होकर रह सकते हैं और कुछ लोग जो तैयार हैं, वे ही संन्यासी होंगे। अन्य कोई घरेलू कामकाज करेगा। **(क्रमश:)**

अनासक्त संन्यासी

स्वामी रामकृष्णानन्द जी महाराज (१३ जुलाई, १८६३ ई. से २१ अगस्त, १९११) चेन्नई में किराये का मकान आइस हाउस (वर्तमान में विवेकानन्द हाउस) में रहते थे। स्थायी मठ के लिए महाराज प्रयासरत्त थे किन्तु किसी प्रकार से भी स्थायी मठ का व्यवस्था नहीं हो पा रहा था। आइस हाउस को निलाम किया जाने लगा, पर मठ के पास उसे खरीदने के लिए पर्याप्त धन नहीं था। एक भक्त ने उसे खरीदने का प्रयास किया लेकिन प्रतिस्पर्धा के कारण मूल्य क्रमश: बढ़ता गया जिससे वह भक्त भी उसे खरीदने में अमसर्थ हो गये। स्वामी रामकृष्णानन्द उस समय निकट ही एक बेंच पर बैठे हुये थे और एक भक्त बीच-बीच में उन्हें नीलामी की स्थिति समझा रहे थे। परिस्थिति बिगड़ती देख स्वाभाविक ही था कि वे भक्त चिन्तित हो उठे। परन्तु स्वामी रामकृष्णानन्द जी महाराज जैसे साक्षी-भाव से बैठे थे, वैसे ही बैठे रहे और शान्तिपूर्वक कहा, ''तुम चिन्ता मत करो। मकान को कौन खरीदेगा और कौन बेचेगा, इससे कुछ आने-जाने का नहीं। मेरी आवश्यकता थोड़ी है। मैं कहीं भी पड़ा रहकर ठाकुर का नाम-गुणगान करते हुए दिन बिता सकूँगा।'' ऐसे अनासक्त संन्यासी थे स्वामी रामकृष्णानन्द जी महाराज।

पुस्तकें प्राप्त हुईं –

१. काली माता, लेखिका – भगिनी निवेदिता, पृष्ठ १०४, मूल्य २०/-
२. चरित्र निर्माण से राष्ट्र निर्माण, लेखक – स्वामी विवेकानन्द, पृष्ठ १०३, मूल्य २०/-

प्रकाशक
अद्वैत आश्रम, ५ डिही एण्टाली रोड,
कोलकाता – ७०००१४

स्वामी संवित् सुबोधगिरि द्वारा संकलित और सम्पादित डॉ. हरिवंशराय ओबेराय की पुस्तकें –

१. गीता में ज्ञानयोग – पृष्ठ ६४, मूल्य ४०/-
२. जीवन-रहस्य और मृत्यु रहस्य – पृष्ठ ४०, मूल्य २५/-
३. गीता में भक्तियोग – पृष्ठ ४८, मूल्य - ३०/-
४. गीता का मनोविज्ञान – पृष्ठ- २०८, मूल्य १२५/-
५. आत्मतत्त्व भारत की अमरता एवं स्वस्थ जीवन का राज – पृष्ठ १२८, मूल्य ८०/-
६. भारतीय दर्शन एवं विज्ञान का तुलनात्मक तत्त्वावलोचन – पृष्ठ ८०, मूल्य ५०/-
७. विश्व भारत का चिर ऋणी है – पृ.३१२, मूल्य ३००/-
८. भारतीय दर्शन परम्परा – पृष्ठ १५२, मूल्य १००/-
९. रामायण का हार्द – पृष्ठ १८४, मूल्य १००/-
१०. गीता ज्ञान की कुंजी – पृष्ठ १३६, मूल्य १२०/-
११. भारतीय परम्परा में उत्सव – पृष्ठ ११२, मूल्य ७०/-
१२. हमारे साहित्यकार – पृष्ठ १२०, मूल्य ७५/-
१३. गोस्वामी तुलसीदास – पृष्ठ- ५६, मूल्य ५०/-
१४. सिख परम्परा, उनकी समस्या और समाधान, पृष्ठ ८०, मूल्य ५०/-
१५. हमारी राष्ट्रीय समस्या – पृष्ठ २१६, मूल्य १३०/-
१६. हमारे स्वतन्त्रता सेनानी – पृष्ठ १६०, मूल्य १००/-

प्रकाशक एवं वितरक
स्वामी संवित सुबोधगिरि
श्रीनृसिंह भवन, संन्यास आश्रम, भक्तानन्द शिव मन्दिर, भीनासर – ३३४४०३, बीकानेर (राजस्थान)
मोबा. ०९४१३७६९१३९

रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, देवघर के छात्रों ने सिल्वर जोन फाउण्डेशन, नयी दिल्ली द्वारा आयोजित २ ओलम्पियाडों में भाग लिया एवं १३ स्वर्ण पदक, ११ रजत पदक एवं १० कास्य पदक अर्जित किए। इन विद्यार्थियों में से छह ने इन ओलम्पियाडों में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रथम स्थान अर्जित किया। इसके अतिरिक्त, विद्यापीठ की कक्षा सातवीं के एक छात्र ने संस्कृत भारती शिक्षण ट्रस्ट, कोव्वुरू, आन्ध्रप्रदेश द्वारा आयोजित राष्ट्रीय स्तरीय संस्कृत ओलम्पियाड में प्रथम स्थान प्राप्त किया।

रामकृष्ण मठ-मिशन, अगरतला के छात्रों ने सिल्वरजोन फाउण्डेशन नयी दिल्ली द्वारा आयोजित ६ ओल्मपियाडों में भाग लिया एवं ३८ स्वर्ण पदक, ४० रजत पदक एवं ३१ कास्य पदक अर्जित किये। इसी विद्यालय के छात्रों ने भारत अन्तर्राष्ट्रीय साराभाई छात्र वैज्ञानिक अवार्ड प्रतियोगिता में २ स्वर्ण पदक जीते।

आदर्शोन्मुखी शिक्षा एवं युवा कार्यक्रम

रामकृष्ण मिशन, नई दिल्ली ने २६ अप्रैल से २३ मई तक 'आदर्शोन्मुखी शिक्षा' विषय पर ११ ऑनलाईन कार्यशालाएँ आयोजित कीं, जिनमें कुल ५४२ शिक्षकों एवं अभिभावकों ने इन कार्यक्रमों में भाग लिया।

रामकृष्ण मठ, हैदराबाद द्वारा, २ से २३ मई तक 'आदर्शोन्मुखी शिक्षा' विषय पर ४ वेबिनार आयोजित किये गये, जिसमें २५० विद्यालयों से कुल ४१५ प्रधानाध्यापकों एवं अध्यापकों ने भाग लिया।

रामकृष्ण मिशन आश्रम, कानपुर केन्द्र द्वारा २१ मार्च को युवा सम्मेलन का आयोजन किया गया, जिसमें १७५ युवा उपस्थित थे।

रामकृष्ण मिशन के विभिन्न केन्द्रों द्वारा राहत कार्य किये गये

रामकृष्ण मिशन आश्रम, नारायणपुर, छत्तीसगढ़ ने जागरूकता अभियान चलाया एवं ग्रामवासियों में ४७४ मास्क, ३० साबुन टिकिया, सेनेटाइजर आदि का वितरण किया। इसके अतिरिक्त आश्रम द्वारा कुछ टीकाकरण एवं टेस्टिंग केन्द्र शुरू किये गये, जिसमें कुल १२७६ लोगों का टीकाकरण किया गया एवं १४९ लोगों की जाँच की गयी।

राजकोट आश्रम द्वारा राहत कार्य

रामकृष्ण आश्रम, राजकोट, गुजरात ने सूरत जिले के किम टाउन क्षेत्र में कोविड मरीजों को २१५५ प्लेट भोजन दिया एवं १ से २४ मई तक राजकोट, अहमदाबाद एवं कच्छ जिलों के ३७० गरीब परिवारों में चावल, दाल, आटा, तेल, नमक, चीनी, मसाले, चायपत्ती, साबुन से युक्त राशन किट का वितरण किया। गरीब परिवारों में कोविड से बचाव हेतु दवाइयाँ एवं ६०० मेडिकल किटों का वितरण किया गया।

रामकृष्ण मिशन आश्रम, भोपाल, मध्यप्रदेश ने सरकारी चिकित्सालय में १५ दिनों तक १०० मरीजों में फल वितरण किया एवं २०० परिवारों में राशन किटों का वितरण किया।

इन्दौर आश्रम द्वारा होम-क्वारंटाइन लोगों को भोजन देते हुए

रामकृष्ण मिशन, इन्दौर, मध्यप्रदेश ने ७ से २७ मई तक गरीब लोगों में १८८२ खाद्य पैकेट वितरित किए एवं इन्दौर के सरकारी चिकित्सालयों के मरीजों में फल एवं बिस्कुट वितरित किये।

रामकृष्ण मिशन, डिबरूगढ़, असम ने २७ एवं २८ मई को ५० परिवारों में राशन किट वितरित किया।

रामकृष्ण मठ और मिशन, करीमगंज ने ७ मई को टीकाकरण केन्द्र आरम्भ किया और मई में ११०० लोगों को टीका लगवाया।